वर्ष : 8
अंक : 57

संत श्री आसारामजी आश्रम
द्वारा प्रकाशित

सितम्बर : 1997
6/-

गणेश चतुर्थी
6 सितम्बर

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ८
अंक : ५७
९ सितम्बर १९९७

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८० ००५.
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती,
अमदावाद-३८० ००५ ने पारिजात प्रिन्टरी एवं
भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अमदावाद में तथा पूर्वी
प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

प्रस्तुत है...

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग : ATN चैनल पर रोज सुबह ७-३० से ८. ZEE टी.वी. चैनल पर रोज सुबह ७ से ७.३०

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक आवश्य बतायें।

परिस्थितियों के प्रभाव से परे

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सारे जन्म-मरण मन की चंचलता और आसक्ति का फल है। सारे दुःख, क्लेश और मुसीबतों का मूल है मन की चंचलता और आसक्ति । गीता में अर्जुन कहता है श्रीकृष्ण से :

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

'हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाववाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान है, इसलिए इसको वश में करना मैं वायु की भाँति अति दुष्कर मानता हूँ ।'

तब श्रीकृष्ण कहते हैं :

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।

'हे महाबाहो ! निःसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होनेवाला है, परंतु हे कुंतीपुत्र अर्जुन ! अभ्यास से अर्थात् स्थिति के लिए बारंबार यत्न करने से और वैराग्य से मन वश में होता है ।' (गीता : ६. ३४.३५)

ज्यों-ज्यों मन शांत होता जायेगा, त्यों-त्यों उसमें परमात्मा का सुख उभरता जायेगा । ज्यों-ज्यों मन अनासक्त होगा, त्यों-त्यों मन परमात्म-प्रेम में पावन होता जायेगा ।

ज्यों-ज्यों मन शांत होता जायेगा, उसमें परमात्मा का सुख उभरता जायेगा । ज्यों-ज्यों मन अनासक्त होगा, त्यों-त्यों मन परमात्म-प्रेम में पावन होता जायेगा ।

आलस्य को भगाने के लिए परिश्रम, उत्साह, स्फूर्ति और तत्परता के विचार सहायक हैं । ऐसे ही कामुकता को दूर करने के लिए ब्रह्मचर्य के विचार, मातृभावना, पवित्रता एवं संयम के विचार, विकारों के परिणाम के विचार करना मददरूप बनता है । क्रोध को भगाना हो तो शांति, प्रेम, क्षमा, मैत्री, सहानुभूति, सज्जनता, उदारता एवं आत्मभाव के विचार सहायक हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, निराशा-हताशा, आलस्य आदि आत्मसुख को लूटनेवाले विकार हैं ।

मन में क्रोध आया, हम क्रोधित हुए । क्रोध चला गया, हम शांत हुए । मन में काम आया, व्यक्ति कामी हो गया । काम चला गया, व्यक्ति शांत हो गया । मन में निराशा-हताशा आयी, चिंता आयी तो नींद हराम हो गयी, खाना खराब हो गया, स्वास्थ्य बिगड़ गया । निराशा-हताशा एवं चिंता के विचारों को हटाने के लिए साहस, आशा, पुरुषार्थ के विचार करो । इस प्रकार एक-एक दोष को निकालने के लिए उसके विपरीत विचार करो ।

विकारों की जगह पर निर्विकारिता ले आओ । आपका जीवन सुखमय हो जायेगा, आनंदमय हो जायेगा, मधुमय हो जायेगा । भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : अगर तुम्हें इसी जीवन में अपने जीवनदाता के स्वभाव को पाना है, सारे दुःखों से सदा के लिए छूटना है तो...

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।

जिसने अपने-आप पर विजय कर ली है, वह शीत-उष्ण अर्थात् अनुकूलता और प्रतिकूलता को सहनेवाला शरीर के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता वरन् शरीर पर उसका प्रभाव बढ़ जाता है । दुःख और सुख मन को होता है । दुःख-सुख में जो सम रहता है, वह मन के प्रभाव से दबता नहीं और वह मन का स्वामी होने में सफल हो जाता है । मान-अपमान की गाँठ बुद्धि को होती है, यह समझकर जो उससे परे हो जाता है, उसे मान-अपमान प्रभावित नहीं कर सकते ।

'सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमानादि आते-जाते रहते हैं, लेकिन मैं तो नित्य हूँ, निर्विकार हूँ... निर्विकार नारायण का

अविभाज्य अंग हूँ... ऐसा चिंतन कर। मेरे भाई! पवित्र आचरण का, संयम सदाचार का आश्रय ले। ऐसा करने से शरीर के साथ का अपना अहं प्रत्यय हटता जायेगा और मन की तमाम वृत्तियों से अपना पिण्ड छूटता जायेगा तथा साधक सिद्धत्व के रास्ते चल पड़ेगा। फिर शरीर का प्रभाव तुम पर नहीं पड़ेगा, मन का प्रभाव तुम पर नहीं पड़ेगा वरन् तुम्हारा प्रभाव शरीर और मन पर पड़ेगा। बुद्धि का प्रभाव तुम पर नहीं पड़ेगा, तुम्हारा प्रभाव बुद्धि पर पड़ेगा। जैसे, भगवान का प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है वैसे ही इस जीवात्मा का प्रभाव शरीर, मन और बुद्धि पर पड़ जाये तो जीवात्मा परमात्मा से अभिन्न हो जाये। अरे ! अभिन्न क्या होना ? वास्तव में तो दोनों अभिन्न ही हैं यह पता चल जाये।

अगर मन पर अपना प्रभाव पड़ा तो वासनाएँ शांत होने लगेंगी और अपने चित्त में परमात्मा से दूरी की जो भ्रांति है, वह दूर हो जायेगी। फिर अपने ही मन में परमात्मा का वैभव, आनंद और माधुर्य उभरने लगेगा।

अगर मन पर अपना प्रभाव पड़ा तो वासनाएँ शांत होने लगेंगी और अपने चित्त में परमात्मा से दूरी की जो भ्रांति है, वह दूर हो जायेगी। फिर अपने ही मन में परमात्मा का सुख, परमात्मा का वैभव, परमात्मा का आनंद और परमात्मा का माधुर्य उभरने लगेगा। जैसे, बादल के हटने पर सूर्य दिखता है अथवा तो शीतकाल में आकाश स्वच्छ होता है, वैसे ही शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक प्रभावों से ज्यों-ज्यों अपने को दूर करता जायेगा, त्यों-त्यों अपना साफ-सुथरा आत्मसुख, आत्मवैभव प्रगट होता जायेगा।

धनबल, जनबल, बाहुबल और बुद्धिबल इन सारे बलों को जहाँ से बल मिलता है वह है आत्मवैभव। अगर आत्मवैभव मिल गया तो बाकी के वैभव तुम्हारे दास होने लगेंगे, बाकी के वैभव फिर तुम्हें आसक्त नहीं कर पायेंगे।

जैसे, व्यक्ति दूसरों को सुधारने के लिए तत्पर होता है, शत्रु का दोष बड़ी तत्परता से खोज निकालता है, ऐसे ही अपनी कमजोरियाँ खोज निकाले तो वह महापुरुष बन जायेगा।

व्यक्ति शत्रु का दोष बड़ी तत्परता से खोज निकालता है, ऐसे ही अपनी कमजोरियाँ खोज निकाले तो वह महापुरुष बन जायेगा।

बुद्ध के सत्संग में सत्संगी आते थे, बुद्धिमान, संयमी भिक्षु भी आते थे और आम आदमी भी आते थे। बुद्ध ने सत्संग पूरा किया। आम आदमी तो चल दिये लेकिन एक किशोर और कुछ साधक भिक्षु बैठे रहे। उस किशोर ने बुद्ध से प्रश्न किया : ''भन्ते! सबसे छोटा आदमी कौन है ?''

वह किशोर बड़ा धीर-गंभीर, शांत, चंचलतारहित चित्तवाला लग रहा था। बुद्ध ने उसका प्रश्न सुना और वे गंभीर हो गये। बच्चे का प्रश्न बढ़िया था। बुद्ध तनिक देर के लिए अपने-आपमें आ गये, फिर बोले :

''सबसे छोटा आदमी वह है जो केवल अपने लिए ही सोचता है, जो केवल अपने स्वार्थ में ही मशगूल रहता है। जो केवल अपने लिए ही जीता है, वह सबसे छोटा व्यक्ति है।''

ज्यों-ज्यों सोच का दायरा, विचार का दायरा व्यापक होता जायेगा, त्यों-त्यों व्यक्ति बड़ा होता जायेगा। दूसरों के दुःख हरने में और दूसरों के चित्त में सुख भरने में, दूसरों की अशांति हरने में एवं शांति भरने में जितना-जितना चित्त मशगूल होगा उतना-उतना चित्त चैतन्य के साथ तदाकार होता जायेगा और दूसरों का दुःख हरने का सामर्थ्य आता है दुःखहारी श्रीहरि में गोता मारने से। जरा-जरा बात में, जरा-सी शारीरिक सुविधा-असुविधा से प्रभावित मत हो, मानसिक सुख-दुःख से प्रभावित मत हो और बुद्धिगत मान-अपमान से भी प्रभावित मत हो, क्योंकि असुविधाएँ तुम्हें डराकर डरपोक बना देंगी और सुविधाएँ तुम्हें आसक्त

दूसरों की अशांति हरने में, शांति भरने में जितना-जितना चित्त मशगूल होगा उतना-उतना चित्त चैतन्य के साथ तदाकार होता जायेगा। दूसरों का दुःख हरने का सामर्थ्य आता है दुःखहारी श्रीहरि में गोता मारने से।

करके खोखला कर देंगी। सुख तुम्हें आसक्त करके खोखला कर देगा और दुःख तुम्हारे अंतःकरण को अशुद्ध कर देगा।

भगवान कहते हैं :

जितात्मनः प्रशांतस्य।

आप प्रशांत रहो। अशांत नहीं, शांत नहीं वरन् प्रशांत रहो अर्थात् सुव्यवस्थित शांत रहो। शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक चाहे कोई भी प्रतिकूलता आये या अनुकूलता, आप प्रशांतात्मा रहो, जितात्मा रहो। ज्यों-ज्यों आप जितात्मा होंगे, त्यों-त्यों आपका जीवन सशक्त होगा, निखरेगा और आप सफलता के उन शिखरों पर पहुँच जायेंगे, जहाँ पहुँचना साधारण आदमी के लिए असाध्य है, दुर्लभ है।

ज्यों-ज्यों आप जितात्मा होंगे त्यों-त्यों आपका जीवन सशक्त होगा, निखरेगा और आप सफलता के उन उत्तुंग शिखरों पर पहुँच जायेंगे जहाँ पहुँचना साधारण आदमी के लिए असाध्य है, दुर्लभ है।

धनबल, जनबल, बाहुबल की अपेक्षा स्वभावबल ज्यादा हितकारी है। जिसका स्वभाव दिव्य हो जाता है उसके पास धनबल, सत्ताबल आदि अपने-आप खिंचकर आ जाते हैं और जिसका स्वभावबल क्षीण है उसकी थोड़ी-बहुत प्रशंसा करके लोग उसका शोषण कर लेते हैं। जिसका स्वभावबल कमजोर है, जो जरा-जरा बात से प्रभावित हो जाता है उसे तो दूसरे लोग भी जरा-जरा बात में प्रभावित करके अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं।

संसार में तुम कहीं भी जाओ तो सब तुम्हारे शोषण की ताक में ही रहते हैं। अगर तुम्हारा स्वभावबल दिव्य नहीं है तो तुम उनके शोषण के शिकार हो जाओगे।

संसार में तुम कहीं भी जाओ तो सब तुम्हारे शोषण की ताक में ही रहते हैं। जैसे, दुकानदार ग्राहक के शोषण की ताक में रहते हैं कि 'ज्यादा पैसे लेकर माल दूँ।' फिर अगर तुम्हारा स्वभावबल दिव्य नहीं है तो तुम उनके शोषण के शिकार हो जाओगे। लोग तुम्हें थोड़ी-सी सुविधा देकर तुम्हारा शोषण कर लेंगे। अतः तुम सुविधाओं के गुलाम मत बनो, उनमें फँसो मत वरन् याद रखो श्रीकृष्ण की दिव्य वाणी को कि :

जो दुनिया की 'तू-तू... मैं-मैं' से प्रभावित नहीं होता, जो दुनियादारों की निंदा-स्तुति से प्रभावित नहीं होता, जो दुनिया के सुख-दुःख से प्रभावित नहीं होता, वह दुनिया को हिलाने में अवश्य सफल हो जाता है।

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।

शीत और उष्ण ये दो शब्द कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने तमाम शारीरिक सुविधा-असुविधाओं से अप्रभावित रहने की प्रेरणा दी है। 'सुख-दुःख' ये दो शब्द कहकर मानसिक प्रभावों से अप्रभावित रहने की प्रेरणा दी है और मान-अपमान ये दो शब्द कहकर बौद्धिक प्रभावों से अप्रभावित रहने की प्रेरणा दी है ताकि आपका अपना दिव्य स्वभाव प्रगट हो सके।

अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ आयें तो तुम उनमें फँसो मत, नहीं तो वे तुम्हें ले डूबेंगी। शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक तीनों ही प्रभावों से अगर थोड़े-से सावधान हो गये तो योगी का योग सफल होने लगेगा, तपी का तप सफलता की सुवास बिखेरेगा, ध्यानी का ध्यान सफल होने लगेगा, भक्त की भक्ति सफल होने लगेगी और जपी का जप भी आत्मरस प्रगटाने में सफल हो जायेगा।

जो दुनिया की 'तू-तू... मैं-मैं' से प्रभावित नहीं होता, जो दुनियादारों की निंदा-स्तुति से प्रभावित नहीं होता और जो दुनिया के सुख-दुःख से प्रभावित नहीं होता, वह दुनिया को हिलाने में अवश्य सफल हो जाता है।

सुविधा-असुविधा, यह इन्द्रियों का धोखा है, सुख-दुःख, यह मन की वृत्तियों का धोखा है और मान-अपमान यह बुद्धिवृत्ति का धोखा है। इन तीनों से बच जाओ तो संसार आपके लिए नंदनवन हो जायेगा। अगर इन तीन प्रभावों से आप ऊपर उठ गये तो आपका चित्त कहीं जाकर नहीं, कुछ पाकर नहीं, कुछ छोड़कर नहीं, मरने के बाद नहीं वरन् आप जहाँ हो वहीं-के-वहीं और उसी समय चैतन्य का सुख पा लेगा।

सरदार वल्लभभाई पटेल,

लौह पुरुष एक बार रेल के दूसरे दर्जे में यात्रा कर रहे थे। कम्पार्टमेन्ट में भीड़-भाड़ नहीं थी, वरन् वे अकेले थे। इतने में स्टेशन पर गाड़ी रुकी और एक अंग्रेज माई आयी। उसने देखा कि 'इनके पास तो खूब सामान-वामान है।' अतः वह बोली :

''यह सामान देकर तुम चले जाओ, नहीं तो मैं शोर मचाऊँगी। राज्य हमारा है और तुम 'इण्डियन' आदमी हो। मैं तुम्हारी बुरी तरह पिटाई करवाऊँगी।''

जो आदमी परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता, वह परिस्थितियों को प्रभावित कर देता है। सरदार वल्लभभाई पटेल को युक्ति लड़ाने में देर नहीं लगी। उन्होंने माई की बात सुनी तो सही किन्तु ऐसा स्वाँग किया कि मानो वे बहरे हैं। वे इशारे से बोले :

''तुम क्या बोलती हो, वह मैं नहीं सुन पा रहा हूँ। तुम जो बोलना चाहती हो, वह लिखकर दे दो।''

उस अंग्रेज माई ने समझा कि 'यह बहरा है, सुनता नहीं है' अतः उसने लिखकर दे दिया। जब चिट्ठी सरदार के हाथ में आ गयी तो वे खूब जोर से हँसने लगे। अब माई बेचारी क्या करे ? उसने तो धमकी देनी चाही थी किन्तु अपने हस्ताक्षरवाली चिट्ठी देकर खुद ही फँस गयी।

ऐसे ही प्रकृति माई से हस्ताक्षर करवा लो तो फिर वह क्या शोर मचायेगी ? क्या पिटाई करवायेगी और क्या तुम्हें जन्म-मरण के चक्कर में डालेगी ? इस प्रकृति माई की यही तीन बातें हैं : शीत-उष्ण, सुख-दुःख और मान-अपमान। इनसे अपने को अप्रभावित रखो तो विजय तुम्हारी है। किन्तु गलती यह करते हैं कि हम साधन भी करते हैं और असाधन भी साथ में रखते हैं। हम सच्चे भी बनना चाहते हैं और झूठ भी साथ में रखते हैं। भले बने बिना भलाई खूब करते हैं और बुराई भी नहीं छोड़ते हैं। विद्वान होना भी चाहते हैं और बेवकूफी भी साथ में रखते हैं। भय भी साथ में रखते हैं और निर्भय होना भी चाहते हैं। आसक्ति साथ में रखकर अनासक्त होना चाहते हैं, इसीलिए परमात्मा का पथ लंबा हो जाता है।

भगवान का प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है वैसे ही इस जीवात्मा का प्रभाव शरीर, मन और बुद्धि पर पड़ जाये तो जीवात्मा परमात्मा से अभिन्न हो जाये।

अतः अपने स्वभाव में जागो। 'स्व' भाव अर्थात् 'स्व' का भाव। परभाव नहीं। सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान आदि परभाव हैं क्योंकि ये शरीर, मन और बुद्धि के हैं, हमारे नहीं। सर्दी आयी तब भी हम थे, गर्मी आयी तब भी हम हैं। सुख आया तब भी हम थे और दुःख आया तब भी हम हैं। अपमान आया तब भी हम थे और मान आया तब भी हम हैं। हम पहले भी थे, अब भी हैं और बाद में भी रहेंगे। अतः सदा रहनेवाले अपने इसी 'स्व' भाव में जागो।

दुःख-सुख में जो सम रहता है, वह मन का स्वामी होने में सफल हो जाता है। मान-अपमान से परे हो जाता है, उसे मान-अपमान प्रभावित नहीं कर सकते।

शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता, मन के सुखाकार और दुःखाकार भाव, बुद्धि के रागाकार और द्वेषाकार भाव इनको आप सत्य मत मानिये। ये तो आने-जानेवाले हैं, बनने-मिटनेवाले हैं, बदलनेवाले हैं लेकिन अपने स्वभाव को जान लीजिए तो काम बन जायेगा। जितना-जितना आदमी जाने-अनजाने 'स्व' के भाव में होता है उतना-उतना वह परिस्थितियों के प्रभाव से अप्रभावित रहता है और जितना वह अप्रभावित रहता है उतना ही उसका प्रभाव परिस्थितियों पर पड़ता है।

(पृष्ठ १७ का शेष)

तुकारामजी से प्रार्थना की शिवोबा कासर ने और जब तुकारामजी के स्नान से गीली हुई मिट्टी लगाई उस कुलटा ने तब उसके फफोले मिटे।

अगर परमात्मा और प्रकृति संत के पक्ष में न रहें, सत्य का पक्ष न लें तो निंदकों ने, विरोधियों ने तो संतों और धर्म के लिए ऐसा जहर फैलाया कि धरती पर संत बनने को कोई तैयार ही न हो।

लेकिन प्रकृति और परमात्मा संतों के दैवी कार्य में सहभागी होते हैं एवं उनके विरोधियों की पूरी खबर ले लेते हैं। तभी हजारों निंदक आये और मर-मिट गये किन्तु संतों की यशपताका तो आज भी फहरती रहती है, सत्संगियों का प्रेम बढ़ता ही रहता है, श्रद्धा बढ़ती ही रहती है।

अनेक में एक

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

वेदांत के ज्ञान की महिमा अमाप है। वेदांत का ज्ञान सुनने से जितना पुण्य होता है उतना पुण्य चांद्रायण व्रत रखने से या पैदल यात्रा करके पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से या अश्वमेध यज्ञ करने से भी नहीं होता है।

वेदांत का ज्ञान सुनने से जितना पुण्य होता है उतना पुण्य चांद्रायण व्रत रखने से या पैदल यात्रा करके पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से या अश्वमेध यज्ञ करने से भी नहीं होता है।

किसी आश्रम में कोई नया साधक गुरुजी के दर्शन-सत्संग के लिये आ पहुँचा। उस साधक ने अपनी शंका का समाधान पाने के लिये गुरुजी से पूछा : ''गुरुजी ! कोई कहता है कि भगवान मंदिर में रहते हैं और कोई कहता है कि भगवान अपने हृदय में रहते हैं तो सचमुच में भगवान कहाँ रहते हैं ?''

गुरुजी ने कहा : ''इतनी-सी बात है न ! वह तो तू मेरे पुराने शिष्य से ही पूछकर समझ ले।''

अनेक रूपों में बसे हुए वे एक-के-एक सच्चिदानंद परमात्मा ही मेरा आत्मा है, ऐसा ज्ञान जिसे हो जाता है उसका जीवन सफल हो जाता है।

साधक ने शिष्य के पास जाकर वही बात दुहराई कि 'भगवान कहाँ रहते हैं ?'

शिष्य ने उसकी शंका का समाधान करते हुए कहा : ''भगवान सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं। वे एक-के-एक अनेक रूपों में दिखते हैं। जैसे आकाश एक है फिर भी घट में आया हुआ आकाश घटाकाश, मठ में आया हुआ आकाश मठाकाश, मेघ में आया हुआ आकाश मेघाकाश और खुला आकाश महाकाश कहलाता है, वैसे ही भगवान परमात्मा एक हैं लेकिन जिस रूप में आते हैं वैसे दिखते हैं।

अनेक रूपों में बसे हुए वे एक-के-एक सच्चिदानंद परमात्मा ही मेरा आत्मा है, ऐसा ज्ञान जिसे हो जाता है उसका जीवन सफल हो जाता है।''

शिष्य की बात को समझने की कोशिश करता हुआ वह साधक अपनी शंका का कुछ तो समाधान पा रहा था लेकिन उसे पूर्ण संतोष नहीं हुआ था। शिष्य और साधक की बातों को गुरुजी सुन रहे थे। गुरुजी ने उसी बात को और स्पष्ट रूप से समझाते हुए कहा : ''बेटा ! सुनो। एक हजार घट लाकर उसमें पानी भरकर चंद्रमा का प्रतिबिंब देखो तो साफ (शुद्ध) पानी में प्रतिबिंब स्पष्ट दिखेगा और मैले पानी में प्रतिबिंब साफ नहीं दिखाई देगा। वैसे ही परमात्मा का प्रतिबिंबरूप जीवात्मा अनेक अंतःकरणों में अलग-अलग स्वरूप में दिखाई देता है।

जैसे, विद्युत् शक्ति तो एक ही होती है लेकिन ट्यूबलाईट में ज्यादा प्रकाश देती है, बल्ब में उसके रंग के अनुरूप प्रकाश देती है, माईक्रोफोन में आवाज बनाती है, हीटर में से गर्मी देती है, फ्रीज में बर्फ बनाती है, रेकोर्डिंग में उसका उपयोग होता है तो आवाज टेप करती है। एक ही विद्युत् शक्ति अनेक रूपों में अलग-अलग कार्य करती दिखाई देती है। स्थूल भौतिक शक्ति भी यदि अनेक रूपों में कार्य करती हुई दिखती है तो वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म चैतन्य परमात्मा अनेक रूपों में एक ही दिखाई दें इसमें क्या आश्चर्य है ?''

मूलतः एक-का-एक परमात्मा कार्य-कारण की भिन्नता से अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है।

अनुभवी महापुरुषों के, ग्रंथों के, शास्त्रों के, भगवान श्रीकृष्ण, भगवान श्रीराम, याज्ञवल्क्य, अष्टावक्र, राजा जनक जैसे ब्रह्मवेत्ताओं के वचनों के अलावा ऐसा दिव्य

ज्ञान कहीं सुनने को नहीं मिलता है। सब लोग इसे नहीं सुन पाते हैं। कई लोग सुनना भी चाहते हैं तो अभागे अश्रद्धालु लोग उनकी श्रद्धा को डगमगाते हैं, कई तरह के बहाने बताकर उसे आध्यात्मिक रास्ते पर चलने से रोक लेते हैं। जो ईश्वर के मार्ग से किसीको दूर करते हैं ऐसे लोग महापाप के भागी बनते हैं।

किसी व्यक्ति ने मुझसे कहा : ''बापू ! आपके गुरु लीलाशाहजी महाराज ने तो आत्म-साक्षात्कार किया था न ? वे आये थे हमारे गाँव। उनके दर्शन से मुझे बहुत आनंद आया और श्रद्धा भी हुई लेकिन उनकी बातों पर मुझे विश्वास नहीं हुआ।''

मुझे आश्चर्य हुआ। मैं उसे देखता ही रह गया कि 'जिसे मेरे गुरुजी की बात पर विश्वास नहीं हुआ, उसे मेरी बात पर विश्वास कैसे आयेगा ?'

मैंने पूछा : ''मेरे गुरुजी की कौन-सी बात पर विश्वास नहीं आया ?''

उसने कहा : ''लीलाशाहजी बापू कहते थे कि अपना आत्मा ही परमात्मा है। वह एक ही आत्मा सबमें है।''

मैंने कहा : '' हाँ, ठीक ही तो है। हमारा आत्मा ही परमात्मा है और वही आत्मा सबमें बस रहा है।''

उसने कहा : ''बापू ! अभी कुछ समय पहले मेरी माँ मर गई। सबमें एक ही आत्मा है तो हम सब भी मर जाने चाहिए थे न ?''

मैंने कहा : ''ऐसा कोई जरूरी नहीं है।''

उसने पूछा : ''यह कैसे हो सकता है ?''

मैंने कहा : ''भाई ! दस घड़ों में पानी भरकर रखो, उनमें पूनम की रात को चंद्रमा का प्रतिबिंब देखो तो दस चंद्रमा दिखेंगे कि नहीं ?''

''हाँ।''

''उनमें से एक घड़ा फोड़ डालो तो नौ प्रतिबिंब दिखेंगे कि नहीं ?''

''हाँ, दिखेंगे।''

''बाकी नौ को भी फोड़ डालो तो असली चंद्रमा रहेगा कि नष्ट हो जाएगा ?''

''असली तो रहेगा।''

''जैसे एक घड़ा फूट जाय या उसका पानी ढुल जाय तो उससे दूसरे प्रतिबिंब या असली चंद्रमा को कुछ हानि नहीं होती। वैसे ही यह देहरूपी घड़ा फूट जाये तो उससे शाश्वत आत्मा को कुछ हानि नहीं होती। वह अमर आत्मा ही परमात्मा है। सबके हृदय में वही है।''

शरीर को 'मैं' मानने के बजाय अपने को आत्मा मान लो और आत्मा-परमात्मा को एक जान लो तो समस्त सुख-दुःख से सदा के लिए पार हो जाओगे।

उसने फिर से पूछा : ''बापू ! सबके हृदय में वही आत्मा है तो जब मुझे हृदय में सुख का अनुभव होता है तब सबको सुख होना चाहिए और मुझे दुःख का अनुभव होता है तब सबको दुःख होना चाहिए। यह नहीं होता है। क्यों ?''

''क्योंकि जैसे दस घड़ों को भट्ठी पर रखेंगे तो उनमें भरा हुआ पानी उबलेगा लेकिन उसमें आया हुआ प्रतिबिंब उबलेगा क्या ? उसे ताप लगेगा क्या ?''

''नहीं।''

जैसे, भट्ठी पर रखने से घड़ा भी तपेगा, घड़े का पानी भी तपेगा, पर उससे चंद्रमा के प्रतिबिंब पर या चंद्रमा पर कोई असर नहीं होगा। वैसे ही हरेक मनुष्य के अंतःकरण अलग-अलग होते हैं, उनमें सुख-दुःख का अनुभव तो होता है परंतु उन सबसे परे सबका साक्षी, चैतन्य परमात्मा सुख-दुःख के प्रभाव से मुक्त रहता है। हम अपने उस साक्षीस्वरूप को भूलकर देह और मन के साथ जुड़कर सुख-दुःख से परे होने के बदले अपने में उसका अनुभव करने लगते हैं।

शरीर को 'मैं' मानने के बजाय अपने को आत्मा मान लो और आत्मा-परमात्मा को एक जान लो तो समस्त सुख-दुःख से सदा के लिए पार हो जाओगे।

★

(पृष्ठ २९ का शेष)

आध्यात्मिक आत्माएँ हैं। प्रकृति और परमात्मा सज्जनों के पक्ष में होते हैं। इसलिए हमें हिम्मत रखकर सावधान होना चाहिए। सतर्क रहना चाहिए और सदाचार का जीवन जीना चाहिए, देश से वफादार रहना चाहिए। दुराचारियों की पोल खोल कर औरों को भी सावधान करना चाहिए। तब ही स्वतंत्रता की रक्षा होगी।

- *पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू*

निराकार हुए साकार जब...

[गणेश चतुर्थी, ६ सितम्बर पर विशेष]

जहाँ दृढ़ विश्वास एवं श्रद्धा होती है, वहाँ प्रभु स्वयं साकार रूप धारण करके भोजन स्वीकार करें, इसमें क्या आश्चर्य !

गणपति के भक्त मोरया बापा, विट्ठल के भक्त तुकारामजी एवं श्रीरघुवीर के भक्त श्री समर्थ- तीनों आपस में मित्र संत थे। किसी भक्त ने हक की कमाई करके, चालीस दिन के लिए अखंड कीर्तन का आयोजन करवाया। पूर्णाहुति के समय दो हजार भक्त कीर्तन कर रहे थे। उन भक्तों के लिए बड़ी सात्त्विकता एवं पवित्रता से भोजन बना था।

किसीने कहा : ''श्री समर्थजी को श्री सियाराम साकार रूप में दर्शन देते हैं। तुकारामजी महाराज की भक्ति से प्रसन्न होकर विट्ठल साकार रूप प्रगट कर लेते हैं। **गणानां पतिः इति गणपतिः।** इन्द्रियगण के जो स्वामी हैं, सच्चिदानंद आत्मदेव हैं वे गणपति मोरया बापा की दृढ़ उपासना के बल से निर्गुण-निराकार होकर भी सगुण-साकार गणपति के रूप में प्रगट हो जाते हैं। ये तीनों महान् संत हमारी सभा में विराजमान हैं। क्यों न हम उन्हें हृदयपूर्वक प्रार्थना करें कि वे अपने-अपने इष्टदेव का आवाहन करके, उन्हें भोजन-प्रसाद करवायें, बाद में हम सब प्रसाद ग्रहण करें ?''

सबने सहमति प्रदान कर दी। तब उन्होंने श्री समर्थ से प्रार्थना की। श्री समर्थ ने मुस्कुराते हुए तुकोबा की तरफ नजर फेंकी और कहा : ''यदि तुकोबा विट्ठल को बुलायें तो मैं सियाराम का आवाहन करने का प्रयत्न करूँगा।''

तुकारामजी मंद-मंद मुस्कुराते एवं विनम्रता का परिचय देते हुए बोले : ''अगर समर्थ की आज्ञा है तो मैं जरूर विट्ठल को आमंत्रित करूँगा लेकिन मैं श्री समर्थ से यह प्रार्थना करता हूँ कि वे श्री सियाराम के दर्शन करवाने की कृपा करें।''

फिर दोनों संतों ने मीठी नजर डाली मोरया बापा पर और बोले :

''बापा ! अगर विघ्नविनाशक श्री गजानन नहीं आयेंगे तो हमारा काम कैसे चलेगा ? आपकी उपासना से श्री गजानन संतुष्ट हैं अतः आप उनका आवाहन करियेगा।''

मोरया बापा भी मुस्कुरा पड़े।

उदयपुर के पास नाथद्वारा है। वहाँ वल्लभाचार्य के दृढ़ संकल्प और प्रेम के बल से भगवान श्रीनाथजी ने उनके हाथ से दूध का कटोरा लेकर पिया था। श्री रामकृष्ण परमहंस के हाथों से माँ काली भोजन का स्वीकार कर लेती थीं। धन्ना जाट के लिए भगवान ने सिलबट्टे से प्रगट होकर उसका रूखा-सूखा भोजन भी बड़े प्रेम से स्वीकार लिया था।

> *वल्लभाचार्य के दृढ़ संकल्प और प्रेम के बल से भगवान श्रीनाथजी ने उनके हाथ से दूध का कटोरा लेकर पिया था। श्री रामकृष्ण परमहंस के हाथों से माँ काली भोजन स्वीकार कर लेती थीं। धन्ना जाट के लिए भगवान ने सिलबट्टे से प्रगट होकर उसका रूखा-सूखा भोजन भी बड़े प्रेम से स्वीकार लिया था।*

श्री समर्थ रामदास ने आसन लगवाये। तुकारामजी एवं मोरया बापा ने सम्मति दी और तीनों संत आभ्यांतर-बाह्य शुचि करके अपने-अपने इष्टदेव का आवाहन करने लगे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते हैं : ''जब तुम्हारा हृदय और शब्द एक होते हैं तो प्रार्थना फलित होती है।''

तीनों अपने-अपने इष्टदेव का आवाहन कर ही रहे थे कि इतने में देखते-ही-देखते एक प्रकाशपुंज धरती की ओर आने लगा। उस प्रकाशपुंज में सियाराम की छबि दिखने लगी और वे आसन पर विराजमान हुए। फिर विट्ठल भी

पधारे तथा गणपति दादा भी पधारे एवं अपने-अपने आसन पर विराजमान हुए।

दो हजार भक्तों ने अपने चर्मचक्षुओं से उन साकार विग्रहों के दर्शन किये एवं उन्हें प्रसाद पाते देखा। उनके प्रसाद पाने के बाद ही सब लोगों ने प्रसाद लिया।

इस घटना को महाराष्ट्र के लाखों लोग जानते-मानते हैं। कैसी दिव्य महिमा है संतों महापुरुषों की! कितना बल है दृढ़ विश्वास में!

★

तीन कदम पृथ्वी

[वामन जयंती १७ सितम्बर पर विशेष]

भक्तशिरोमणि प्रह्लाद के पुत्र विरोचन से महाबाहु बलि का जन्म हुआ। बलि महा बलवान, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, नित्य धर्मपरायण, पवित्र और श्रीहरि के प्रियतम भक्त थे। उन्होंने इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं और मरुद्‌गणों को जीतकर तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया था। बलि को अपने बल का बड़ा अभिमान था।

इधर महर्षि कश्यप अपने पुत्र इन्द्र को राज्य से वंचित् देख उनके हित की इच्छा से भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के लिए अपनी पत्नी-सहित तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान विष्णु भगवती लक्ष्मी के साथ प्रगट हो गये एवं उन्होंने महर्षि कश्यप से वरदान माँगने को कहा।

तब कश्यपजी बोले : ''भगवान! दैत्यराज बलि ने तीनों लोकों को बलपूर्वक जीत लिया है। आप मेरे पुत्र होकर देवताओं का हित कीजिए। किसी भी उपाय से बलि को परास्त करके मेरे पुत्र इन्द्र को त्रिलोकी का राज्य प्रदान कीजिए।''

भगवान विष्णु : ''तथास्तु।''

समय पाकर विष्णुजी ने ही कश्यप की धर्मपत्नी अदिति की कोख से ब्रह्मचारी वामन के रूप में अवतार लिया। उनके जन्म के पश्चात् समस्त देवता एवं महर्षियों ने आकर उनकी स्तुति की। तब भगवान वामन ने प्रसन्न होकर उन देवताओं से कहा : ''देवताओं! बताइए, इस समय मुझे क्या करना है?''

देवता बोले : ''भगवान! इस समय राजा बलि यज्ञ कर रहा है। अतः ऐसे अवसर पर वह कुछ देने से इन्कार नहीं कर सकता। प्रभो! आप दैत्यराज से तीनों लोक माँगकर इन्द्र को देने की कृपा करें।''

भगवान ने कहा : ''ठीक है।''

क्या भगवान की भक्तवत्सलता है! समस्त सृष्टि के निर्माता स्वयं कुछ माँगने चले हैं। देवताओं के कहने पर भगवान वामन बलि की यज्ञशाला में पहुँचे।

भगवान वामन को ब्रह्मचारी के रूप में आया देखकर बलि सहसा उठकर खड़े हो गये एवं अर्घ्यपाद्य से उनका पूजन किया और बोले : ''हे विप्रवर! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ। कहिए, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? हे द्विजश्रेष्ठ! आप जिस वस्तु को पाने के उद्देश्य से मेरे पास पधारे हैं, उसे शीघ्र बताइए। मैं अवश्य दूँगा।'

भगवान वामन बोले : ''महाराज! मुझे केवल तीन कदम भूमि का दान दीजिए क्योंकि भूमिदान सब दानों में श्रेष्ठ है। इससे दाता और याचक दोनों स्वर्गगामी होते हैं।''

यह सुनकर बलि ने प्रसन्नतापूर्वक कहा :

''बहुत अच्छा।''

तत्पश्चात् बलि ने विधिपूर्वक भूमिदान का संकल्प किया। बलि को ऐसा करते देख उनके पुरोहित शुक्राचार्यजी बोले : ''राजन्! ये कोई साधारण ब्रह्मचारी नहीं अपितु स्वयं भगवान विष्णु हैं और तीन कदम भूमि में तुम्हारा संपूर्ण राज्य हड़प कर लेना चाहते हैं। अतः तुम इन्हें कोई और वस्तु दान करो, भूमि मत दो।''

बलि : ''गुरुवर! इससे अधिक भाग्य की बात और

''गुरुवर! इससे अधिक भाग्य की बात और क्या हो सकती है कि जिनकी प्रसन्नता के लिये मैं यह यज्ञ कर रहा हूँ वे ही भगवान विष्णु स्वयं याचक बनकर पधारे हैं! उनके लिये तो मुझे मेरा जीवन तक दे डालने में संकोच न होगा। अतः आज इन ब्राह्मण देवता को मैं तीन लोक तक दे डालने में संकोच नहीं करूँगा।''

क्या हो सकती है कि जिनकी प्रसन्नता के लिये मैं यह यज्ञ कर रहा हूँ वे ही भगवान विष्णु स्वयं याचक बनकर पधारे हैं ! आज मैं धन्य हो गया। उनके लिये तो मुझे मेरा जीवन तक दे डालने में संकोच न होगा। अतः आज इन ब्राह्मण देवता को मैं तीन लोक तक दे डालने में संकोच नहीं करूँगा।''

ऐसा कहकर बलि ने बड़े प्रेम से ब्राह्मणरूपधारी भगवान विष्णु का पूजन किया एवं हाथ में जल लेकर भूमि-दान का संकल्प किया और बोले :

''हे ब्रह्मन् ! आज आपको भूमिदान देकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। आप अपनी इच्छानुसार इस पृथ्वी को ग्रहण करें।''

बलि के इतना कहने पर भगवान ने अपना वामन रूप त्याग कर विराट रूप धारण कर लिया और एक कदम में पूरी पृथ्वी तथा दूसरे कदम में पूरे स्वर्ग को आवृत्त कर लिया। फिर बोले :

''बलि ! अब तीसरा कदम कहाँ रखूँ ?''

बलि : ''भगवान ! कृपा करके अपना तीसरा कदम मेरे सिर पर रख दीजिए।''

बलि की सत्यवादिता से प्रसन्न होकर भगवान बोले : ''हे बलि ! तुम मेरे परम भक्त हो। सावर्णि मन्वन्तर में तुम इन्द्र बनोगे। तब तक विश्वकर्मा के बनाये हुए सुतल लोक में रहो। वहाँ मैं स्वयं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरों की और भोगसामग्री की भी सब प्रकार के विघ्नों से रक्षा करूँगा। हे वीर बलि ! तुम वहाँ सदा-सर्वदा मुझे अपने पास ही देखोगे। मेरे प्रभाव से तुम्हारा आसुरी भाव नष्ट हो जायेगा।''

भगवान की आज्ञा पाकर बलि सुतल लोक को चले गये। इस प्रकार भगवान ने बलि से स्वर्ग का राज्य लेकर इन्द्र को दे दिया और स्वयं उपेन्द्र बनकर सारे जगत पर शासन करने लगे।

भगवान वामन की कृपा से इन्द्र ने तो अपना खोया हुआ राज्य पा ही लिया और बलि की सत्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर भगवान स्वयं उनके द्वारपाल बनने को तैयार हो गये। क्या भगवान की करुणा है ! क्या उनकी उदारता है कि उन्हें अपने भक्त का द्वारपाल बनने तक में संकोच नहीं है ! वे ही प्रभु अंतर्यामी होकर हमारे अंतःकरण में भी द्वारपाल बने हुए हैं। शुभ विचार, शुभ प्रवृत्ति से वे प्रसन्न होते हैं और भीतर ही भीतर सामर्थ्य देते हैं। अशुभ विचार, अशुभ प्रवृत्तियों को रोकते-टोकते हैं। काश ! उन वामन को, उन नन्हें नारायण अंतर्यामी ईश्वर को अपना परम सुहृद, परम हितैषी, परम प्रेमास्पद जानकर बलि की नाईं उन्हीं की प्रसन्नता हमारा जीवन हो जाये तो फिर वे हमसे दूर नहीं और हम उनसे दूर नहीं, वे हमसे अलग नहीं और हम उनसे अलग नहीं... यह बोध भी आसान हो जायेगा।

['पद्मपुराण' एवं 'श्रीभागवत सुधा सागर' पर आधारित]

आत्मबल ही वास्तविक बल है

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जो बलवान है, प्राणशक्ति से युक्त है उसके लिए पराये भी अपने हो जाते हैं जबकि दुर्बलों के लिए अपने भी पराये हो जाते हैं।

वीरभोग्या वसुन्धरा।

बल ही जीवन है। निर्बलता ही मौत है। समस्त बलों का उद्‌गमस्थल है आत्मा। आत्मा के कारण ही सब प्रिय लगता है और सफलता, सौन्दर्य, माधुर्य, आनंद आदि भी आत्मा की आभा से ही निखरते हैं। इस असत्, जड़, दुःखरूप, परिवर्तनशील और क्लेशों से परिपूर्ण जगत में भी उन्हीं लोगों को रस, आनंद, माधुर्य आदि मिलता है, जिनके जीवन में जगमगाते हुए आत्मभाव का प्रकाश है।

बल ही जीवन है। निर्बलता ही मौत है। समस्त बलों का उद्‌गमस्थल है आत्मा। आत्मा के कारण ही सब प्रिय लगता है और सफलता, सौन्दर्य, माधुर्य, आनंद आदि भी आत्मा की आभा से ही निखरते हैं।

जिन वस्तुओं से आपका अपनत्व है वे ही वस्तुएँ प्यारी लगती हैं। 'अपना मकान... अपनी गाड़ी... अपना बेटा...' आदि क्यों प्यारे लगते हैं? क्योंकि उनमें आपका अपनत्व है। दुनियाभर के प्रिय व्यंजन आपके समक्ष रख दिये जायें, फिर भी यदि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तो वे सारे व्यंजन आपको फीके लगेंगे, नीरस लगेंगे क्योंकि जिह्वा में अपना रस नहीं है। जिह्वा में जब अपनत्व का, चैतन्य का रस होता है, तभी व्यंजन रसमय लगते हैं नहीं तो उन जड़ व्यंजनों में रस कहाँ? इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के साथ भी है।

जिन चीजों को भोगने योग्य मानकर तुम अपनी आभा, अपनी ऊर्जा, अपने आत्मचैतन्य की शक्ति बिखेर देते हो, उन्हीं चीजों के इन बाह्य आकर्षणों की अपेक्षा, उनमें जो आत्मसत्ता है उसका ख्याल रखकर अपनी आत्मसत्ता का विकास करो तो तुम्हारा बल बढ़ जायेगा।

एक समय था जब बालक माँ की गोद से पलभर भी दूर नहीं होना चाहता था। जब माँ जवान थी और बालक लाचार था, उसे माँ से पोषण मिलता था, तब वह बार-बार माँ की गोद में पहुँच जाता था। माँ की गोद पाने के लिए चीखता-पुकारता था। लेकिन वही बालक बड़ा होकर माँ को बूढ़ी पाता है और अब माँ से उसका स्वार्थ नहीं सिद्ध होता तो वह माँ की ओर देखता तक नहीं। माँ के पास कुछ देर बैठने की उसे फुरसत तक नहीं क्योंकि अब जिससे स्वार्थ सिद्ध होता है वह अपनी पत्नी मिल चुकी है। यह सारा संसार ही अपने स्वार्थ से एक-दूसरे के साथ जुड़ा है। तुलसीदासजी ने भी कहा है :

सुर नर मुनि सबकी यह रीति।
स्वारथ लागहिं करहिं सब प्रीति॥

जितनी-जितनी तुम्हारी प्राणशक्ति उस आत्मदेव से संचालित होती है, जितने-जितने तुम प्राणवान् हो, तेजवान् हो, ओजवान् हो उतने-उतने लोग तुम्हारे इर्द-गिर्द मंडराते हैं। बुढ़ापे में प्राणशक्ति क्षीण हो जाती है, ओज-तेज कम हो जाता है तो अपने भी पराये होने लगते हैं। नौकरी में से भी 'रिटायरमैण्ट' दे दिया जाता है।

जिसके कारण तुम्हारी कीमत है, उस आत्मसत्ता की महत्ता को तुम जितना अधिक जानोगे, उसे जितना अधिक अपना मानोगे और उसमें विश्रान्ति पाओगे उतने ही तुम महानता के शिखरों को छू सकोगे। नहीं तो थोड़ी-बहुत शक्ति लाकर उसे जगत की बाह्य चकाचौंध में ही खर्च कर दिया तो फिर बुढ़ापे में तुम्हारी खैर नहीं, मृत्यु के बाद तुम्हारी खैर नहीं... न जाने प्रकृति फिर किस शरीर में पटककर तुम्हें अनाथ कर दे? इसलिए कृपा करके प्राणबल रहते ही उस सर्व-सौन्दर्य के, सर्वसत्ता

के उद्गम स्थान को जानकर उसके साथ एक हो जाओ। इसीमें तुम्हारा भला है, कुटुम्ब का भला है, देश का भला है, मानवता का भला है, प्राणीमात्र का भला है।

'मेग्नेट' से जुड़ी हुई प्लेट से लोहे के कण चिपके रहते हैं, लेकिन ज्यों-ही 'मेग्नेट' का आश्रय प्लेट ने छोड़ा तो लोहे के कण भी प्लेट को छोड़ देंगे। ऐसे ही 'मेग्नेटों' का 'मेग्नेट' तुम्हारा आत्मदेव है और यह जड़ शरीर जब तक उस 'मेग्नेट' के करीब है तब तक बाहर के व्यक्ति, बाहर की वस्तुएँ, बाहर का वातावरण आपके साथ सहयोग करता है। जैसे-जैसे उस 'मेग्नेट' से तुम्हारी प्राणशक्ति दूर होती जाती है वैसे-वैसे बाहर के व्यक्ति-वस्तु-वातावरणरूपी लोहे के कण भी तुमसे दूर होते जायेंगे।

धिक् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।

विश्वामित्र को अनुभव हुआ कि क्षात्रबल को धिक्कार है। आत्मबल ही वास्तविक बल है। जवानी में क्षत्रियबल जरा दिखता है किन्तु बुढ़ापा आते ही बूढ़े राजा का राज्य छीन लिया जाता है। बुढ़ापा आते ही नौकर भी मुकरने लगते हैं और पड़ोसी भी आपकी जमीन-जागीर पर निगाह डालने लगते हैं, आपके अपने कुटुम्बी भी आपका अधिकार छीनने की ताक में रहते हैं।

...तो मानना पड़ेगा कि जीवनशक्ति जिस जीवनदाता से आती है उसी जीवनदाता को पाने में लगाना ही बुद्धिमत्ता है, अन्यथा अज्ञानता है।

शारीरिक स्वास्थ्य अर्थात् शारीरिक बल, मानसिक प्रसन्नता अर्थात् मनोबल एवं बौद्धिक योग्यता अर्थात् बौद्धिक बल- ये जितने अधिक होंगे, जितनी आपकी प्राणशक्ति सूक्ष्म होगी और उस आत्मा के साथ आपकी तदाकारता होगी, उतने ही आप इस संसार को नंदनवन की नाईं देख सकेंगे... आप उसी ब्रह्म-परमात्मा के विषय में जानो, उसीका चिंतन करो एवं उसीमें विश्रान्ति पाओ ताकि आपकी मति को ऐसा बल मिले कि आपकी मति 'मति' न बचे, ऋतंभरा प्रज्ञा हो जाए। 'ऋत' अर्थात् 'सत्य' सत्य से पूर्ण आपकी प्रज्ञा हो जाये...

> *जिसके कारण तुम्हारी कीमत है, उस आत्मसत्ता की महत्ता को तुम जितना अधिक जानोगे, उसे जितना अधिक अपना मानोगे और उसमें जितनी विश्रान्ति पाओगे उतने ही तुम महानता के शिखरों को छू सकोगे।*

> *हमारी जीवनशक्ति जिस जीवनदाता से आती है उसी जीवनदाता को पाने में लगाना ही बुद्धिमत्ता है, अन्यथा अज्ञानता है।*

*

(पृष्ठ २० का शेष)

वे उन स्वार्थियों के इन्द्रजाल में फँसते हैं। अन्यथा तो, जिस देश या समाज को गुलामी से छूटना हो उसके लिए तो यह अधोगति का ही मार्ग है। विश्वभर के सारे धन से भी न मिल सके ऐसा भारतवर्ष का यह अमूल्य खजाना है। भारत का यही युवक वर्ग जो पहले देशोत्थान एवं आध्यात्मिक रहस्यों की खोज में लगता था, वही अब रंग-रूप के पीछे पागल होकर अपना जीवन व्यर्थ खोता जा रहा है।

जो लोग भारत की स्वतंत्रता को सच्चाई से जीवित रखना चाहते हैं, मानव मात्र को पशुता में गिरने से बचाना चाहते हैं, युवानों का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक सामर्थ्य बनाए रखना चाहते हैं, इस देश को एड्स (AIDS) जैसी घातक बीमारियों से ग्रस्त होने से रोकना चाहते हैं, स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते हैं उन सबका यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे हमारी गुमराह परतंत्र युवा पीढ़ी को स्वतंत्र, उत्साहित और आनंदित करने के लिए भाइयों को 'यौवन सुरक्षा', 'तू गुलाब होकर महक', 'पुरुषार्थ परमदेव' जैसी पुस्तकें पढ़ायें एवं बहनों को 'महान नारी' जैसी पुस्तकें पढ़ाकर उनका मनोबल, उत्साह व उनका चरित्र निर्माण कर उन्हें आगे बढ़ाएँ।

हमने इन पचास सालों में खोया है अपनी संस्कृति की गरिमा को, भारत की भावी पीढ़ी यानि अपने युवाधन को, अपने देश की नारियों व बहनों के चरित्र व शीलता को, जिसे हमें वापस प्राप्त करना होगा संतों के सान्निध्य से। हमें संतुष्ट होना चाहिए कि अभी भी हमारे पास ज्ञानी महापुरुषरूपी सच्चा धन है जिनके सहारे हम अपनी खोई हुई संस्कृति को सहजता से पा सकते हैं।

*

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

उपासना का महत्त्व

[नवरात्रि : २ से १० अक्टूबर पर विशेष]

सनातन धर्म में निर्गुण निराकार परब्रह्म परमात्मा को पाने की योग्यता बढ़ाने के लिये अनेक प्रकार की उपासनाएँ चलती हैं। उपासना माने उस परमात्म-तत्त्व के निकट आने का साधन।

ऐसे उपासना करनेवाले लोगों में शिवजी के साकार रूप का ध्यान-भजन, पूजन-अर्जन करनेवाले लोगों को शैव उपासक कहा जाता है। भगवान विष्णु की आराधना, अर्चन-पूजन करनेवाले लोगों को वैष्णव कहा जाता है और शक्ति की उपासना करनेवाले लोगों को शाक्त कहा जाता है। बंगाल में कलकत्ता की ओर शक्ति की उपासना करनेवाले शाक्त लोग अधिक संख्या में हैं।

'श्रीमद्देवीभागवत' शक्ति के उपासकों का मुख्य ग्रंथ है। उसमें जगदंबा की महिमा है। शक्ति के उपासक नवरात्रि में विशेषरूप से शक्ति की आराधना करते हैं। इन दिनों में पूजन-अर्चन, कीर्तन, व्रत-उपवास, मौन, जागरण आदि का विशेष महत्त्व होता है।

नवरात्रि को तीन हिस्से में बाँटा जा सकता है। उसमें पहले तीन दिन तमस् को जीतने की आराधना के हैं। दूसरे तीन दिन रजस् को और तीसरे तीन दिन सत्त्व को जीतने की आराधना के हैं। आखिरी दिन दशहरा है। वह सात्त्विक, रजस् और तमस् तीनों गुणों को यानी महिषासुर को मारकर जीव को माया की जाल से छुड़ाकर शिव से मिलाने का दिन है।

जिस दिन महामाया ब्रह्मविद्या महिषासुररूपी आसुरी वृत्तियों को मारकर जीव के ब्रह्मभाव को प्रकट करती है, उसी दिन जीव की विजय होती है। इसलिए उसका नाम विजयादशमी है। हजारों-लाखों जन्मों से जीव त्रिगुणमयी माया के चक्कर में फँसा था, आसुरी वृत्तियों के फंदे में पड़ा था। जब महामाया जगदंबा की अर्चना-उपासना-आराधना की तब वह जीव विजेता हो गया। माया के चक्कर से, अविद्या के फंदे से मुक्त हो गया, वह ब्रह्म हो गया।

विजेता होने के लिए बल चाहिए। बल बढ़ाने के लिए उपासना करनी चाहिए। उपासना में तप, संयम और एकाग्रता आदि जरूरी है।

दशहरा सात्त्विक, रजस् और तमस् तीनों गुणों को यानी महिषासुर को मारकर जीव को माया की जाल से छुड़ाकर शिव से मिलाने का दिन है। जिस दिन महामाया ब्रह्मविद्या महिषासुर-रूपी आसुरी वृत्तियों को मारकर जीव के ब्रह्मभाव को प्रकट करती है उसी दिन जीव की विजय होती है अतः उसका नाम विजयादशमी है।

जगत् में शक्ति के बिना कोई काम सफल नहीं होता है। चाहे आपका सिद्धांत कितना भी अच्छा हो, आपके विचार कितने भी सुंदर और उच्च हों लेकिन अगर आप शक्तिहीन हैं तो आपके विचारों का कोई मूल्य नहीं होगा। विचार अच्छा है, सिद्धांत अच्छा है, इसलिए सर्वसामान्य हो जाता है ऐसा नहीं है। सिद्धांत या विचार चाहे कैसा भी हो, उसके पीछे शक्ति जितनी ज्यादा लगाते हो उतना वह सर्वसामान्य होता है।

चुनाव में भी देखो तो हार-जीत होती रहती है। ऐसा नहीं है कि यह आदमी अच्छा है इसलिए चुनाव में जीत गया और वह आदमी बुरा है इसलिए चुनाव में हार गया। आदमी अच्छा हो या बुरा, चुनाव में जीतने के लिए जिसने ज्यादा शक्ति लगाई वह जीत जाएगा। हकीकत में जिस किसी विषय में जो जितनी ज्यादा शक्ति लगाता है वही जीतता है। वकील लोगों को भी पता होगा कि कई बार ऐसा होता है कि असील चाहे ईमानदार हो चाहे बेईमान

परंतु जिस वकील के तर्क जोरदार, जानदार होते हैं वह केस जीत जाता है।

ऐसे ही जीवन में विचारों को, सिद्धांतों को प्रतिष्ठित करने के लिए शक्ति चाहिए, बल चाहिए, दृढ़ निश्चय चाहिए।

साधकों के लिए उपासना अत्यंत आवश्यक है। जीवन में कदम-कदम पर कैसी-कैसी मुश्किलें, कैसी-कैसी समस्याएँ आती हैं! उनसे लड़ने के लिए, सामना करने के लिए भी बल चाहिए। वह बल उपासना-आराधना से मिलता है।

साधकों के लिए उपासना अत्यंत आवश्यक है। जीवन में कदम-कदम पर मुश्किलें, समस्याएँ आती हैं। उनसे लड़ने के लिए, सामना करने के लिए भी बल चाहिए। वह बल उपासना-आराधना से मिलता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी ने मानो इसका प्रतिनिधित्व किया है। सेतुबंध के समय शिव की उपासना करने के लिए श्रीरामचंद्रजी ने रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना की थी, युद्ध के पहले नौ दिन चण्डी की उपासना की थी, भगवान श्रीकृष्ण ने भी सूर्य की उपासना की थी।

इन अवतारों ने हमें बताया है कि अगर आप मुक्ति पाना चाहते हो तो उपासना को अपने जीवन का एक अंग बना लो। बिना उपासना के विकास नहीं होता है।

अगर मनुष्य अपने मन को नियंत्रण में रख सके और जिस समय जैसी घटना घटे उसे उचित समझकर अपने चित्त को सम रख सके तो इससे बल बढ़ता है। मन को नियंत्रित करने के लिए ही अलग-अलग देवों की उपासना की जाती है। दुर्गाशक्ति की उपासना करके शाक्त लोग अपने चित्त को शांत और एकाग्र करते हैं। शैवपंथी शिव की और वैष्णव लोग विष्णु की उपासना करके चित्त को शांत और एकाग्र करते हैं। कई लोग भगवान सूर्य की उपासना करके अपने जीवन को तेजस्वी बना लेते हैं तो कई **'गणपति बापा मोरिया'** करके चित्त को प्रसन्नता और आनंद से भर देते हैं।

अगर मनुष्य अपने मन को नियंत्रण में रख सके, अपने चित्त को सम रख सके तो इससे उसका बल बढ़ता है।

उपासना से चित्त शांत और प्रसन्न होता है, उसका बल बढ़ता है और तभी आत्मज्ञान के वचन सुनने का और पचाने का अधिकारी बनता है। ऐसा अधिकारी चित्त ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के अनुभव को अपना अनुभव बना लेता है।

*

दुर्गासप्तशती का आविर्भाव

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह से पुनि उपजहिं बहु सूला॥

'सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियों से फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं।'

जीव को जिन चीजों में मोह होता है, देर-सबेर वे चीजें ही जीव को रुलाती हैं। जिस कुटुम्ब में मोह होता है, जिन पुत्रों में मोह होता है, उनसे ही कभी-न-कभी धोखा मिलता है लेकिन अविद्या का प्रभाव इतना गहरा है कि जहाँ से धोखा मिलता है वहाँ से थोड़ा ऊब तो जाता है परंतु उससे छुटकारा नहीं पा सकता और वहीं पर चिपका रहता है।

कलिंग देश के वैश्य राजा विराध के पौत्र और दुर्मिल के पुत्र समाधिवैश्य को भी धन-धान्य, कुटुम्ब में बहुत आसक्ति थी, बहुत मोह था। लेकिन उसी कुटुम्बियों ने, पत्नी और पुत्र ने धन की लालच में उसे घर से बाहर निकाल दिया। वह इधर-उधर भटकते-भटकते जंगलों-झाड़ियों से गुजरते हुए मेधा ऋषि के आश्रम में पहुँचा।

ऋषि का आश्रम देखकर उसके चित्त को थोड़ी-सी शांति मिली। अनुशासनबद्ध, संयमी और सादे रहन-सहनवाले, साधन-भजन करके आत्मशांति की प्राप्ति की ओर आगे बढ़े हुए, निश्चिंत जीवन जीनेवाले साधकों को देखकर समाधिवैश्य के मन में हुआ कि इस

समाधिवैश्य और सुरथ राजा दोनों ऋषि के आश्रम में रहने लगे। दोनों एक ही प्रकार के दुःख से पीड़ित थे।

आश्रम में कुछ दिन तक रहूँगा तो मेरे चित्त की तपन जरूर मिट जाएगी।

सुख, शांति और चैन इन्सान की गहरी माँग है। अशांति कोई नहीं चाहता, दुःख कोई नहीं चाहता लेकिन मजे की बात यह है कि जहाँ से तपन पैदा होती है वहाँ से इन्सान सुख चाहता है और जहाँ से अशांति मिलती है वहाँ से शांति चाहता है। मोह की महिमा ही ऐसी है।

"स्वामीजी ! संसार की नश्वरता और आत्मा की शाश्वतता के बारे में सुनते हैं लेकिन नश्वर संसार का मोह नहीं छूटता और शाश्वत परमात्मा में मन नहीं लगता है। ऐसा क्यों ?"

यह मोह जब तक ज्ञान के द्वारा निवृत्त नहीं होता है तब तक कंधे बदलता है, एक कंधे का बोझ दूसरे कंधे पर धर देता है। ऐसे बोझ बदलते-बदलते जीवन बदल जाता है। अरे ! मौत भी बदल जाती है। कभी पशु का जीवन तो कभी पक्षी का। कभी कैसी मौत आती है तो कभी कैसी। अगर जीवन और मौत के बदलने से पहले अपनी समझ बदल लें तो बेड़ा पार हो जाये। समाधिवैश्य का कोई सौभाग्य होगा, कुछ पुण्य होंगे, ईश्वर की कृपा होगी, वह मेघा ऋषि के आश्रम में रहने लगा।

सुख, शांति, चैन इन्सान की गहरी माँग है। अशांति, दुःख कोई नहीं चाहता लेकिन मजे की बात यह है कि जहाँ से तपन पैदा होती है वहाँ से वह सुख चाहता है। जहाँ से अशांति मिलती है वहाँ से शांति चाहता है। मोह की महिमा ही ऐसी है।

उसी आश्रम में राजा सुरथ भी आ पहुँचा। राजा सुरथ को भी राजगद्दी के अधिकारी बनने से रोकने के लिये कुटुम्बियों ने सताया था और धोखा दिया था। उनके कपटी व्यवहार से उद्विग्न होकर शिकार के बहाने वह राज्य से भाग निकला था। उसे संदेह हो गया था कि किसी-न-किसी षड्यंत्र में फँसाकर वे मुझे मार डालेंगे। अतः उसकी अपेक्षा राज्य का लालच छोड़ देना अच्छा है।

"देवि ! अब ऐसा वर दो कि 'यह मैं हूँ' और 'यह मेरा है' इस प्रकार की अहंता-ममता और आसक्ति को जन्म देनेवाला अज्ञान नष्ट हो जाये और मुझे विशुद्ध ज्ञान की उपलब्धि हो।"

इस तरह समाधिवैश्य और राजा सुरथ दोनों ऋषि के आश्रम में रहने लगे। दोनों एक ही प्रकार के दुःख से पीड़ित थे। आश्रम में तो रहते थे लेकिन मोह नष्ट करने के लिए नहीं आये थे, ईश्वर-प्राप्ति के लिए नहीं आये थे। अपने कुटुम्बियों ने, रिश्तेदारों ने धोखा दिया था, संसार से जो ताप मिला था उसकी तपन बुझाने आये थे। उनके मन में आसक्ति और भोगवासना तो थी ही। इसलिए सोच रहे थे कि तपन मिट जाय फिर बाद में चले जाएँगे।

ऋषि आत्मज्ञानी थे। उनके शिष्य भी सेवाभावी थे। परंतु समाधिवैश्य और राजा सुरथ की तो हालत कुछ और थी। उन दोनों ने मिलकर मेघा ऋषि के चरणों में प्रार्थना की : "स्वामीजी ! हम आश्रम में रह तो रहे हैं लेकिन हमारा मन वही सांसारिक सुख चाहता है। हम समझते हैं कि संसार स्वार्थ से भरा हुआ है। कितने ही लोग मरकर सब कुछ इधर छोड़कर चले गये हैं। धोखेबाज सगे-संबंधियों ने तो हमें जीते-जी छुड़ा दिया है। फिर भी ऐसी इच्छा होती रहती है कि 'स्वामीजी आज्ञा दें तो हम उधर जायें और आशीर्वाद भी दें कि हमारी पत्नी और बच्चे हमें स्नेह करें... धन-धान्य बढ़ता रहे और हम मजे से जियें।"

ऋषि उनके अंतःकरण की ईमानदारी देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा : "इसीका नाम माया है।"

इसी माया की दो शक्तियाँ हैं : आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति। **'चाहे सौ-सौ जूते खायें तमाशा घुसकर देखेंगे।'**

तमाशा क्या देखते हैं ? जूते खा रहे हैं... धक्का-मुक्की सह रहे हैं... हुईसो... हुईसो... चल रहा है... फिर भी **'मुंडो तो मारवाड़।'** कहेंगे बहुत मजा है इस जीवन में। लेकिन ऐसा मज़ा लेने में जीवन पूरा कर देनेवाला जीवन के अंत में देखता है कि संसार में कोई सार नहीं है। ऐसा

करते-करते सब चले गये। दादा-परदादा चले गये और हम-तुम भी चले जाएँगे। हम इस संसार से चले जायें उसके पहले इस संसार की असारता को समझकर एकमात्र सारस्वरूप परमात्मा में जाग जायें तो कितना अच्छा !

समाधिवैश्य और सुरथ राजा ने कहा : ''स्वामीजी ! यह सब हम समझते हैं फिर भी हमारे चित्त में ईश्वर के प्रति प्रीति नहीं होती और संसार से वैराग्य नहीं आता। इसका क्या कारण होगा ? संसार की नश्वरता और आत्मा की शाश्वतता के बारे में सुनते हैं लेकिन नश्वर संसार का मोह नहीं छूटता और शाश्वत परमात्मा में मन नहीं लगता है। ऐसा क्यों ?''

मेघा ऋषि ने कहा : ''इसीको सनातन धर्म के ऋषियों ने माया कहा है। वह जीव को संसार में घसीटती रहती है। ईश्वर सत्य है, परब्रह्म परमात्मा सत्य है, परंतु माया के कारण असत् संसार, नाशवान् जगत सच्चा लगता है। इस माया से बचना चाहिए। माया से बचने के लिए ब्रह्मविद्या का आश्रय लेना चाहिए। वही संसार-सागर से पार करानेवाली विद्या है। इस ब्रह्मविद्या की आराधना-उपासना से बुद्धि का विकास होगा और आसुरी भाव काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार मिटते जाएँगे। ज्यों-ज्यों विकार मिटते जाएँगे त्यों-त्यों दैवी स्वभाव प्रकट होने लगेगा और उस अंतर्यामी परमात्मा में प्रीति होने लगेगी। नश्वर का मोह छूटता जाएगा और उस परमदेव को जानने की योग्यता बढ़ती जाएगी।''

फिर उन कृपालु ऋषिवर ने दोनों के पूछने पर उन्हें भगवती की पूजा-उपासना की विधि बतायी। ऋषिवर ने उस महामाया की आराधना करने के लिए जो उपदेश दिया, वही शाक्तों का उपास्य ग्रन्थ **'दुर्गासप्तशती'** के रूप में प्रकट हुआ। तीन वर्ष तक आराधना करने पर भगवती साक्षात् उनके समक्ष प्रगट हुई और वर माँगने के लिए कहा।

राजा सुरथ के मन में संसार की वासना थी अतः उन्होंने संसारी भोग ही माँगे, किन्तु समाधिवैश्य के मन में किसी सांसारिक वस्तु की कामना नहीं रह गयी थी। संसार की दुःखरूपता, अनित्यता और असत्यता उनकी समझ में आ चुकी थी अतः उन्होंने भगवती से प्रार्थना की कि :

''देवि ! अब ऐसा वर दो कि 'यह मैं हूँ' और 'यह मेरा है' इस प्रकार की अहंता-ममता और आसक्ति को जन्म देनेवाला अज्ञान नष्ट हो जाये और मुझे विशुद्ध ज्ञान की उपलब्धि हो।''

भगवती ने बड़ी प्रसन्नता से समाधिवैश्य को ज्ञान-दान किया और वे स्वरूपस्थित होकर परमात्मा को प्राप्त हो गये।

★

(पृष्ठ ३० का शेष)

सहायता मिलती है।

★ वायु तत्त्व ★

यह तत्त्व अनाहत चक्र में स्थित है। वात, दमा आदि रोग इसी की विकृति से होते हैं।

विधि : आसन पर बैठकर **'यं'** बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए हरे रंग की गोलाकार वस्तु (गेंद जैसी वस्तु) का ध्यान करें।

लाभ : इससे वात, दमा आदि रोगों का नाश होता है व विधिवत् दीर्घकाल के अभ्यास से आकाशगमन की सिद्धि प्राप्त होती है।

★ आकाश तत्त्व ★

इसका स्थान विशुद्ध चक्र में है।

विधि : आसन पर बैठकर **'हं'** बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए नीले रंग के आकाश का ध्यान करें।

लाभ : इस प्रयोग से बहरापन जैसे कान के रोगों में लाभ होता है। दीर्घकाल के अभ्यास से तीनों कालों का ज्ञान होता है तथा अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

विभिन्न तत्त्वों की विकृतियों से होनेवाले सभी रोगों में निम्न पथ्यापथ्य का पालन करना आवश्यक है।

✲ **पथ्य** : दूध, घी, मूँग, चावल, खिचड़ी, मुरमुरे (मूढ़ी)।

✲ **अपथ्य** : देर से पचनेवाला आहार (भारी खुराक), अंकुरित अनाज, दही, पनीर, सूखी सब्जी, माँस-मछली, फ्रीज में रखी वस्तुएँ, बेकरी की बनी हुई वस्तुएँ, मूँगफली, केला, नारंगी आदि।

गुरु का प्रेम, उनकी दयादृष्टि शिष्य की स्थूल प्रकृति का परिवर्तन करके शुद्धिकरण कर सकती है।

संत परहित के लिए विपत्ति सहते हैं

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

श्री रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदासजी ने काकभुशुण्डीजी के श्रीमुख से कहलवाया है कि :

पर उपकार वचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दु:ख पर हित लागी । पर दु:ख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला । पर हित निति सह बिपति बिसाला ॥

'हे पक्षिराज गरूड़ ! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना, यह संतों का सहज स्वभाव है। संत दूसरों की भलाई के लिए दु:ख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दु:ख पहुँचाने के लिए। कृपालु संत भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं)। (उत्तर काण्ड : १२०, ७-८)

ऋषि दयानंद जब समाज में जागृति ला रहे थे तब स्वार्थी लेखकों ने उनकी खूब धज्जियाँ उड़ायीं और उनके विरोधी इतनी दुष्टता पर उतर आये कि उन्होंने ऋषि दयानंद को २१ बार जहर दिया और २२ वीं बार जहर पिलाने में सफल भी हो गये। अब ऋषि दयानंद की दुहाइयाँ देते हैं लोग।

जब-जब संतरूपी सूर्य प्रकाशित हुआ है तब-तब विरोधियोंरूपी बादलों ने उस सूर्य को ढ़कने का प्रयास किया है। जब-जब इस धराधाम पर संत अवतरित हुए हैं, तब-तब इन कुप्रचाररूपी आँधी-तूफानों ने उन पर आपत्तियों की वर्षा करने की कोशिश की है । लेकिन महापुरुषों ने समाज के हित की शुभेच्छा और प्रयास न छोड़े। सज्जन उनके द्वारा उन्नत हुए एवं दुर्जनों के प्रति या तो संत खामोश रहे या थोड़ा बहुत सावधान करते गये।

नानकजी ने सावधान किया तो नानकजी के लिए निंदकों ने कोई कोर-कसर बाकी न रखी। गुरु नानक को तो बाबर के कान भरवाकर जेल में डलवा दिया । किसी सिक्ख से पूछो : ''गुरु नानक में कोई ऐब था इसलिए जेल में गये थे क्या ?'' सिक्ख बोलेगा : ''गुरु नानक में कोई ऐब थोड़े ही था, किन्तु आत्मघाती हत्यारों के ऐबों के कारण सच्चे बादशाह को जेल में जाना पड़ा।''

लेकिन उस समय तो दुष्टों ने ऐसा ही वातावरण बनाया था कि नानकजी में ही ऐब है, इसलिए उन्हें जेल जाना पड़ा। भक्त जानते हैं कि नानक में ऐब नहीं था... कबीर में ऐब नहीं था... एमर्सन में ऐब नहीं था... मीरा में कोई ऐब नहीं था... लेकिन निंदकों-कुप्रचारकों के षड़यंत्र के कारण ही उन पर आरोप लगाये गये थे। तुकारामजी के साथ तो कितना घोर अन्याय किया था निंदकों ने!

एक बार तुकारामजी को भोजन करने के बहाने बुलाया। जब तुकारामजी पहुँचे तो उनसे स्नान का आग्रह किया। जब वे स्नान के लिए चौकी पर बैठे तो उनकी पीठ पर उबलता हुआ पानी डाल दिया शिवोबा कासर की कुलटा पत्नी ने।

तुकारामजी प्रभु से प्रार्थना करने लगे कि : ''तुम्हीं सँभालना, विट्ठल !''

उबलता हुआ पानी डाला गया तो तुकारामजी की पीठ पर और फफोले निकले शिवोबा कासर की पत्नी की पीठ पर। दवाई करते-करते थके पर कोई लाभ नहीं हुआ। तब किसीने कहा :

संत सताये तीनों जाये तेज, बल और वंश।
ऐड़ा ऐड़ा कई गया रावण कौरव केरो कंस ॥

''हो सके तो संतों के दैवी कार्यों में सहभागी होकर अपना भाग्य बना लो। अगर भाग्य नहीं बनाना है तो निंदक होकर दुर्भाग्य को क्यों आमंत्रण देते हो ? अब उन्हीं तुकारामजी महाराज के श्रीचरणों में प्रार्थना करो । उन्हें पवित्र गंगाजल से स्नान करवाओ और स्नान के बाद जो पानी मिट्टी पर गिरे वह गीली मिट्टी फफोलों पर लगाओ तब काम बनेगा।''

(शेष पृष्ठ ५ पर)

स्वातंत्र्य सुवर्ण जयंती वर्ष

एक साधक द्वारा संकलित

सारे जहाँ से अच्छा ।
हिन्दोस्ताँ हमारा ॥

सभी भारतवासियों को देश की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती पर बहुत-बहुत शुभकामनाएँ, बधाइयाँ !

...लेकिन जरा रुकिए, जरा सोचिये कि क्या हम सब बधाई के पात्र हैं या नहीं ? क्या हम अपने ऋषि-मुनियों, संतों-महापुरुषों द्वारा देखे गए स्वर्णिम भारत का स्वप्न साकार कर पाये हैं ? क्या हमें लगता है कि हम वास्तव में स्वतंत्र हैं ? क्या हम विरासत में मिली धरोहर को सम्हाल पाए हैं ? कहाँ गया उस स्वतंत्र भारत का गौरव ? क्या हम अपनी युवा पीढ़ी को सुदृढ़ और संयम की सच्ची शिक्षा दे पाये हैं ? जो कि भारत के भावी हैं, क्या हम उनकी मानसिकता को परतंत्र होने से बचा पाये हैं ? ये सभी प्रश्न अपने-आप से पूछना होगा। इन ५० वर्षों में देश ने क्या पाया है, क्या गँवाया है, आज इसकी समीक्षा :

आज समाज और राष्ट्र अपनी अधोगति की सीमा पर खड़े ललकार रहे हैं कि 'ओ चन्द रूपयों के पीछे अपनी जिन्दगी बेचनेवालों... ! भारत की सनातन संस्कृति पर पश्चिम की नग्नता का प्रहार करनेवालों... ! मांसलता और मादकता की धुन पर थिरककर अपने चरित्र को भ्रष्ट करने वालों...! ओ संतों के निन्दकों... ! ओ भारत माता के हत्यारों... ! जरा संतों की महिमा को तो पहचानो ! उठाओ इतिहास और झाँककर देखो उसके पन्नों में और तलाशो कि एक हजार बरस की लम्बी गुलामी के दौरान विदेशी आक्रमणेकारियों के बर्बरतापूर्वक किए गए एक से बढ़कर एक भीषण आक्रमणों व अत्याचारों के बाद भी सभी प्राचीन उदात्तता, नैतिकता और आध्यात्मिकता का जन्मस्थान रहा यह भारत, उच्चादर्शों से युक्त इसकी पावन संस्कृति यदि नहीं मिटी है तो उसके पीछे किसका हाथ है ?

निःसंदेह उन ज्ञानी महापुरुषों ने ही आज भी अनेकानेक प्रतिकूलताओं के बाद भी समग्र राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोये रखा है।

एक समय था-जब भारत में संतों व महापुरुषों का अत्यधिक आदर कर उनके उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर तथा उनके वचनों में श्रद्धा एवं उनके दैवी कार्यों में सहभागिता निभाकर देशवासी मंगलमय, शांति व समृद्धि से युक्त निश्चिन्त जीवन यापन करते थे। लेकिन जब से पाश्चात्य जगत के चकाचौंधमय दूषित वातावरण से प्रभावित होकर महापुरुषों का सान्निध्य खोया है तब से ही इस देश में नैतिक मूल्यों में निरंतर गिरावट बनी हुई है। नित्यप्रति मानवीय जीवन से उदारता, दयालुता, पवित्रता, आरोग्यता, निश्चिन्तता, समता, प्रखर बौद्धिकता, संयम आदि सद्गुणों का ह्रास हो रहा है। साथ ही साथ नष्ट हो गई है समाज और राष्ट्र से मानवता, आस्तिकता, स्वर्गीय सरसता, लोकहित व परदुःखकातरता, सुसंस्कारिता, चारित्रिक सम्पदा तथा **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना। इससे राष्ट्र नित्य-निरंतर पतन के गर्त में गिरता गया। आज देश पुनीत-पावन संस्कृति के हत्यारों के षड्यंत्रों का शिकार होकर असामाजिक, अनैतिक तथा अपवित्र विचारों व लोगों का अन्धानुकरण कर रहा है।

हमने खोया है अपनी युवा पीढ़ी को, अपने युवाधन को जो पाश्चात्य जगत की चकाचौंध का अंधानुकरण करने में लगा हुआ है। आज हममें क्यों महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह, लालबहादुर शास्त्री, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि वीर पुरुष देखने को नहीं मिलते ? क्योंकि आज हमारी युवा पीढ़ी संयम को भूल चुकी है, स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने लगी है।

आज लौकिक तौर पर तो भारत स्वतंत्र दिखता है लेकिन विदेशी ताकतों ने हमारी मानसिकता को परतंत्र कर दिया है। हमारी युवा पीढ़ी की रीढ़ ही तोड़ दी है। विदेशी चैनलों, टी.वी., फिल्मों द्वारा अनैतिकता का जो दौड़ चल रहा है उसने भारतीय संस्कृति पर व हमारे राष्ट्र के युवाधन पर असंयता, निष्ठुरता और चरित्रहीनता का बहुत ही गहरा असर डाला है।

इन सभी के द्वारा अराजकता, अश्लीलता सर्वत्र फैल रही है। नारी के शील का तो जैसे कोई मूल्य ही नहीं रह गया है। आज बहनों में वह शील जो पहले की नारियों में

देखने को मिलता था, रह ही नहीं गया है। नारी-स्वातंत्र्य के नाम पर क्लबों में जाना, ताश खेलना इत्यादि हल्की मानसिकता हो गई है। वे निर्लज्ज, मुँहफट बनकर शीलता को भूल ही गई हैं। आज देश के सामने एक बहुत बड़ी समस्या उपस्थित हो गई है गर्भपात की। लोग आज जीवित भ्रूणहत्या का पाप पैसे देकर करवा रहे हैं। संयम छूट गया, सदाचार छूट गया और लगे हैं महापाप को करने में। भगवान का प्रसाद समझ संतान का स्वीकार नहीं करते। किसीके गर्भ में अगर कन्या होती है तो वह माता गर्भपात करवा देती है। लड़का हो या लड़की, संतान तो दोनों ही हैं फिर ऐसा घोर पाप क्यों ? आज आवश्यकता है बहनों में इसकी जागरुकता लाने की ताकि वे समझें कि वे क्या कर रही हैं ?

पहले माताएँ-बहनें अपने बच्चों को सुलाती थीं तो उन्हें लोरी सुनाती थीं या भगवान के जीवन-चरित्र सुनाती थी। लेकिन आज के बालक टी.वी. देखकर, डिस्को देखकर सोते हैं तो क्या असर पड़ेगा उनकी मानसिकता पर ? जरा विचार कीजिये।

कहाँ गया वह स्वर्णिम इतिहास ? कहाँ गया वह नैतिक वैभव और वह आध्यात्मिक वैभव ? आज हमारी सहमी आँखें ढूँढ़ा करती हैं एक राम जैसे व्यक्तित्व को, एक सीता जैसी आदर्श नारी को जिनके आदर्शों और पवित्रता से तो भारतीय नारी का सिर पूरे विश्व में उन्नत है।

नारी ! तू नारायणी बन। भारत की महान नारियों की याद ताजी करके दिखा। भारत की खो गई गरिमा को हासिल करके दिखा। पाश्चात्य जगत के शिकंजे से बाहर निकलकर दिखा। तेरे में पूर्ण सामर्थ्य छुपा हुआ है । तुम भी मदालसा, गार्गी, अनसूया, शाण्डिली बन सकती हो।

जिन स्त्रियों ने घर छोड़कर स्वच्छन्द पुरुषवर्ग में विचरण किया है वे अन्य कार्यों में कितनी ही ख्याति क्यों न प्राप्त कर लें, पर यदि वे अन्तर्मुख होकर अपने शील-चरित्र पर दृष्टिपात करें तो अधिकांश नारियों को यह अनुभव होगा कि विकारों ने उनके मानस को मथ डाला है। पतन से कोई विरला ही बच गयी होगी। अब बताइये, दिव्यता की मूर्ति, लज्जाशील नारी को दुकानों एवं ऑफिसों में खड़ी करने से उनके पातिव्रत्य में कितनी हानि होती होगी !

जो चीज जितनी मूल्यवान तथा प्रिय होती है वह उतनी ही अधिक सावधानी, सम्मान और संरक्षण के साथ रखी जाती है। स्त्री पुरुष के विषय-विलास की सामग्री नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण गृहस्थ-धर्म में सहधर्मिणी है।

स्त्री जब कन्या होती है तब पिता द्वारा, युवावस्था में पति द्वारा और वृद्धावस्था में पुत्र द्वारा रक्षणीय है। ऐसा शास्त्रों में आता है।

महिला बनो तो ऐसी बनो, बच्चों को आत्मज्ञान की लोरियाँ दो। घर में भी आत्मज्ञान की चर्चा करो। सुख-दुःख आये तो आत्मज्ञान की निगाहों से निहारो। इस परिवर्तनशील संसार व उसकी परिस्थितियों से कभी प्रभावित मत हो। अपने परमात्मा की मस्ती में मस्त रहो। अपने आत्मगौरव में जागो।

विदेशी ताकतों का षड्यंत्र कामयाब हो रहा है और हम उनके शिकंजे में हँसते-हँसते फँसते जा रहे हैं। यह तो कहाँ की 'स्वतंत्रता' कही जायेगी कि अपनी श्रेष्ठ संस्कृति को छोड़कर, अपने शास्त्रों को छोड़कर, अपनी मर्यादाओं को छोड़कर, अपने संतों के महत्त्व को भूलकर हम अपने-आप को आधुनिक स्वतंत्र मनुष्य सिद्ध करना चाहते हैं और पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण कर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ा मार रहे हैं। क्या यह सब स्वतंत्रता के लक्षण हैं ? हमारे देश के नवयुवकों को स्वतंत्रता का उल्टा पाठ पढ़ाकर उन्हें भ्रमित किया जा रहा है, उन्हें कमजोर किया जा रहा है। विदेशी लोग अपने षड्यंत्र में सफल हो रहे हैं। आज विदेशी चैनलों के द्वारा, फिल्मों के द्वारा एवं कॉनवेन्ट स्कूलों के द्वारा युवा पीढ़ी को गुमराह किया जाता है। उस महान भारत में जहाँ देवता भी जन्म लेने को तरसते हैं, जहाँ अर्जुन जैसे संयमी जो ब्रह्मचर्य की महिमा को समझकर सशरीर ही स्वर्ग में गये थे, हनुमान जैसे ब्रह्मचारी ने जहाँ अपने स्वामी की सेवा की, विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, गुरुनानक जैसे महान पुरुषों, ऋषि-मुनियों की अवतार भूमि पर आज फ्रायड जैसे बेतुकी मानसिकता के लोग एवं उसके आधार पर **'संभोग से समाधि'** का उपदेश देनेवाले लोगों के कारण आज हमारी युवा पीढ़ी गुमराह होकर दुर्वासनाओं, विकारों में भटककर असंयमी होती जा रही है।

विवेकानंद कहा करते थे : ''भारतीय लोग अपने संकल्पबल को भूल गए हैं, इसलिए गुलामी का दुःख भोग रहे हैं। 'हम क्या कर सकते हैं ?' ऐसे नकारात्मक चिंतन द्वारा वे संकल्पहीन हो गए हैं। जबकि अंग्रेजों का बच्चा भी अपने को बड़ा उत्साहवान समझता है और कार्य में सफल

हो जाता है। क्योंकि वह ऐसे विचार करता है : 'मैं अंग्रेज हूँ। दुनिया के बड़े भाग पर हमारी जाति का शासन है। ऐसी गौरवपूर्ण जाति का अंग होकर मुझे कौन रोक सकता है सफलता पाने से ? मैं क्या नहीं कर सकता ?' बस, ऐसा विचार ही उसे सफलता दे देता है।''

जब अंग्रेज बच्चा भी अपनी जाति के गौरव का स्मरण कर संकल्पवान बन सकता है तो आप क्यों नहीं बन सकते ?

''मैं ऋषि-मुनियों की संतान हूँ। भीष्म जैसे दृढ़प्रतिज्ञ पुरुषों की परम्परा में मेरा जन्म हुआ है। गंगा को पृथ्वी पर उतारनेवाले राजा भगीरथ जैसे दृढ़ निश्चयी का रक्त मुझमें बह रहा है। समुद्र को भी पी जानेवाले अगस्त्य ऋषि का मैं वंशज हूँ। राम और कृष्ण की अवतारभूमि पर, जहाँ देवता भी जन्म लेने को तरसते हैं वहाँ मेरा जन्म हुआ है फिर भला मैं दीन-हीन क्यों ? मैं जो चाहूँ वह कर सकता हूँ। आत्मा की अमरता का, दिव्य ज्ञान का, परम निर्भयता का संदेश सारे संसार को जिन ब्रह्मर्षियों ने दिया, उनका वंशज होकर मैं दीन-हीन नहीं रह सकता। मैं अपने रक्त में निर्भयता के संस्कारों को जगाकर रहूँगा। मैं वीर्यवान बनकर रहूँगा।'' युवकों को इस तरह का संकल्प करना चाहिए लेकिन आज भारत की ऐसी दुर्दशा हो गई है कि यह बात तो उन्हें दकियानूसी-सी लगती है। वे बनना चाहते हैं आधुनिक अतः अंधानुकरण करते हैं फिल्मों का और अपने साथ-साथ देश को भी परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ रहे हैं। क्या ऐसे युवान भारत के भावी हैं जो गुलामी में रहने की तैयारी कर चुके हैं ? लौकिक परतंत्रता से भी भयंकर होती है मानसिक परतंत्रता। अगर आप मानसिक तौर पर स्वस्थ होकर विचार नहीं कर सकते, आप पश्चिम से प्रभावित होकर अपनी संस्कृति के लिये किये जा रहे षड्यंत्र में सहभागी हो रहे हैं तो आप खुद भी देश के साथ बड़ी गद्दारी कर रहे हैं। प्रिय सज्जनों ! वे लोग तो हमारा अनुसरण कर अब सुधरने के रास्ते पर हैं और हम आँख और समझ होते हुए भी परतंत्रता की पट्टी लगा उनके छोड़े हुए रास्ते को पकड़ अपने को बड़ा समझ रहे हैं।

षड्यंत्रकारियों द्वारा देश के नवयुवकों को भटकाया जा रहा है। नवयुवकों को मादक द्रव्य, गन्दे साहित्य व गंदी फिल्मों से बरबाद होने से बचाया जाय। वे ही तो राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं। स्कूलों, कॉलेजों में युवक-युवतियाँ तेजस्वी हों, ब्रह्मचर्य की महिमा समझें इसलिए हम सब लोगों का कर्त्तव्य है कि विद्यार्थियों तक ब्रह्मचर्य का साहित्य पहुँचायें। सरकार का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि ब्रह्मचर्य विषय पर विद्यार्थी सावधान रहें और तेजस्वी बनें। ईमर्सन जैसे अमेरिकी लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते थे एवं गीता का दिव्य स्मरण करते थे तो हम क्यों न करें ?

आईन्स्टीन कहते हैं : ''मैंने पिछले चार साल से अपनी पत्नी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित नहीं किया है व ध्यान का अभ्यास करता हूँ। मेरी सफलता का यही रहस्य है।'' परन्तु अमेरिका में फ्रायड के मनोविज्ञान का अंधानुकरण करने के कारण २ करोड़ लोग स्नायविक बीमारियों के शिकार हैं। १० लाख विद्यार्थी भावनात्मक समस्याओं के कारण स्कूल और कॉलेज छोड़ देते हैं। अमेरिका के ६५ प्रतिशत विवाह तलाक में समाप्त होते हैं। २० लाख से अधिक लड़कियाँ हर साल विवाह के पूर्व ही गर्भवती हो जाती हैं। अमेरीका में पुरुषों की जितनी मौतें होती हैं उनमें से ७५ प्रतिशत हत्या, आत्महत्या, शराब पीकर कार चलाने के कारण होती हैं। अमेरिका में हर २१ मिनट में एक हत्या व हर १० सेकेंड में एक सेंधमारी होती है, हर १६ सेकेंड में एक बच्चा गायब होता है, हर १७ सेकेंड में एक कार चोरी हो जाती है और हर ६ मिनट में एक स्त्री की इज्जत लूटी जाती है। ८० लाख किशोर-किशोरियाँ प्रति सप्ताह कम से कम एक बार शराब पीते ही हैं। ३ लाख या उससे अधिक लोग प्रतिवर्ष आत्महत्या का प्रयास करते हैं जिनमें ५६ हजार सफल हो जाते हैं। अमेरिका में हर एक लाख में ४२५ लोग जेल में हैं जबकि भारत में प्रति लाख में सिर्फ २३ व्यक्ति ही जेल में हैं। अमेरिका में प्रतिदिन ६४ व्यक्ति 'एड्स' की बीमारी से मरते हैं।

एक विदेशी विद्वान एफ. एच. मोलेम (इंग्लैण्ड) कहते हैं : ''बाइबिल का मैंने यथार्थ अध्ययन किया है। उसमें जो लिखा है, वह केवल गीता का अंश ही है। जो ज्ञान गीता में है, वह ईसाई यहूदी बाइबिलों में नहीं। मुझे यही आश्चर्य होता है कि भारतीय नवयुवक यहाँ इंग्लैण्ड तक पदार्थ विज्ञान सीखने क्यों आते हैं ? निःसंदेह उनका पाश्चात्यों के प्रति मोह ही इसका कारण है। उनके भोलेभाले हृदयों ने अभी निर्दय और अविनम्र पश्चिमवासियों के दिल पहचाने नहीं हैं। इसीलिए उनकी शिक्षा से मिलनेवाले पदों की लालच से

(शेष पृष्ठ १२ पर)

सच्ची कमाई

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

आचार्य विनोबा भावे एक बार ट्रेन में सफर कर रहे थे। रास्ते में किसी नदी के पुल पर से रेलगाड़ी गुजर रही थी। विनोबाजी के पास में बैठे हुए यात्री ने अपनी जेब में से पाँच पैसे निकालकर खूब भाव से, प्रेम से **'गंगे हर'** कहकर नदी में डाले। महाराष्ट्र में सभी नदियों को गंगा कहकर संबोधन किया जाता है।

पास में बैठे हुए किसी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित बुद्धिवाले, अपने को सुधरा हुआ, पढ़ा-लिखा माननेवाले आदमी ने यह देखा। वह चिढ़कर बोल उठा :

''एक तो भारत गरीब देश है। उसमें भी तुम्हारे जैसे भगतड़े संपत्ति को बेकार में ऐसे बहते हुए जल में डाल दें फिर भारत की दुर्दशा नहीं होगी तो और क्या होगा ?''

विनोबाजी दोनों के बीच में बैठे थे। वे तो संत थे, तटस्थ दृष्टिवाले थे। उन्होंने देखा कि इस भाई को थोड़े सत्संग की जरूरत है। भाई पढ़े-लिखे तो बहुत हैं, दिमाग में थोथे-पोथे भर लिये हैं लेकिन दिल का खजाना प्रगट करने की कला नहीं जानते हैं। जैसे, रहुगण राजा पर कृपा करके जड़भरत मुनि ने उन्हें उपदेश दिया था वैसे ही उस साहब पर कृपा करके विनोबाजी ने उनसे कहा :

''भाई ! उसने पाँच पैसे नदी में डाले इतने में तो तुम भाषण देने लग गये कि भारत ऐसा गरीब देश और ऐसे भगतड़े नदी में पैसे डालते रहें तो देश की दुर्दशा ही होगी लेकिन तुम बिना जरूरत के इस देश में यह टाई और सूट-बूट के लिये पैसे खर्च करते हो वह व्यर्थ नहीं लगता ? पफ-पावडर में, भोग-विलास के साधनों में तुम्हारे जैसे कई लोगों के लाखों-करोड़ों रूपये व्यर्थ खर्च नहीं होते हैं ? इतना ख़र्च करके भी तुम्हारे हृदय तो संकीर्ण ही रहते हैं, कुंठित ही रहते हैं। जबकि यह तो बहती सरिता को भगवान के श्रीविग्रह का एक स्वरूप मानता है, सूर्यनारायण में उसे प्रभु का प्रकाश नजर आता है। यह सरिता हजारों जीव-जंतुओं का, हजारों मानवों का पोषण कर रही है। यह प्रभु की अनमोल देन है। उसे देखकर उसे भगवान की विराट सत्ता की स्मृति हो आई। सूर्यनारायण को भी प्रणाम करके 'सूर्य का भी सूर्य परमात्मा है, उसका प्रकाश अपने हृदय में प्रगट हो' - ऐसी भावना करके नदी में पाँच पैसे चढ़ाये तो उसका हृदय कितना शुद्ध और पवित्र हुआ ! उसके भाव कितने उन्नत हुए ! हृदय की त्यागवृत्ति और प्रेमवृत्ति दोनों का विकास हुआ। तुम अपनी कमाई का जो उपयोग करते हो, उससे तो तुम्हारी वृत्ति भोगप्रधान, विलासी बन जाती है। फिर भी तुम्हारे जैसे लोग उसकी श्रद्धा को अंधश्रद्धा कहकर उसका अपमान करते हैं लेकिन उसे अंधश्रद्धा कहना भी अंधश्रद्धा है। तुम लोग बीड़ी-सिगरेट-शराब में श्रद्धा करते हो और कितने पैसे खर्च कर देते हो ? तुम्हारी नजर में बहती सरिता का पानी हाइड्रोजन-ऑक्सीजन का मिश्रण है लेकिन इस भक्त की नजर में तो प्रभु की कृपा बह रही है, जो कितनों ही को जीवन देती है ! वे भक्त बाहर से भोलेभाले दिखते हैं किन्तु उनके पास जो भीतर की शांति और प्रेम है उतना तुम्हारे पास है क्या ? उसने पाँच पैसे नदी में चढ़ाकर उस विराट की स्मृति जगाई कि 'हे सर्वेश्वर ! सरिता में भी तू, सूर्यनारायण में भी तू, सबमें तू ही तू, तेरी लीला अपरंपार है मेरे प्रभु !' ऐसा करके उसने अपने दिल को प्रेम से और मधुरता से भर दिया है जबकि तुमने उसकी श्रद्धा को तुच्छ कहकर अपने हृदय को कुंठित कर लिया है। बोलो, किसने गँवाया और किसने सच्ची कमाई की ? उसने ही सच्ची कमाई कर ली है।''

> *जीवन के हर मौके पर अपने हृदय को हृदयेश्वर के प्रेम से, मधुरता से भरते रहोगे तभी तुम्हारी सच्ची कमाई होगी।*

जीवन के हर मौके पर तुम भी अपने हृदय को हृदयेश्वर के प्रेम से, मधुरता से भरते रहोगे तभी तुम्हारी

सच्ची कमाई

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

आचार्य विनोबा भावे एक बार ट्रेन में सफर कर रहे थे। रास्ते में किसी नदी के पुल पर से रेलगाड़ी गुजर रही थी। विनोबाजी के पास में बैठे हुए यात्री ने अपनी जेब में से पाँच पैसे निकालकर खूब भाव से, प्रेम से **'गंगे हर'** कहकर नदी में डाले। महाराष्ट्र में सभी नदियों को गंगा कहकर संबोधन किया जाता है।

पास में बैठे हुए किसी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित बुद्धिवाले, अपने को सुधरा हुआ, पढ़ा-लिखा माननेवाले आदमी ने यह देखा। वह चिढ़कर बोल उठा :

''एक तो भारत गरीब देश है। उसमें भी तुम्हारे जैसे भगतड़े संपत्ति को बेकार में ऐसे बहते हुए जल में डाल दें फिर भारत की दुर्दशा नहीं होगी तो और क्या होगा ?''

विनोबाजी दोनों के बीच में बैठे थे। वे तो संत थे, तटस्थ दृष्टिवाले थे। उन्होंने देखा कि इस भाई को थोड़े सत्संग की जरूरत है। भाई पढ़े-लिखे तो बहुत हैं, दिमाग में थोथे-पोथे भर लिये हैं लेकिन दिल का खजाना प्रगट करने की कला नहीं जानते हैं। जैसे, रहुगण राजा पर कृपा करके जड़भरत मुनि ने उन्हें उपदेश दिया था वैसे ही उस साहब पर कृपा करके विनोबाजी ने उनसे कहा :

''भाई ! उसने पाँच पैसे नदी में डाले इतने में तो तुम भाषण देने लग गये कि भारत ऐसा गरीब देश और ऐसे भगतड़े नदी में पैसे डालते रहें तो देश की दुर्दशा ही होगी लेकिन तुम बिना जरूरत के इस देश में यह टाई और सूट-बूट के लिये पैसे खर्च करते हो वह व्यर्थ नहीं लगता ? पफ-पावडर में, भोग-विलास के साधनों में तुम्हारे जैसे कई लोगों के लाखों-करोड़ों रूपये व्यर्थ खर्च नहीं होते हैं? इतना ख़र्च करके भी तुम्हारे हृदय तो संकीर्ण ही रहते हैं, कुंठित ही रहते हैं। जबकि यह तो बहती सरिता को भगवान के श्रीविग्रह का एक स्वरूप मानता है, सूर्यनारायण में उसे प्रभु का प्रकाश नजर आता है। यह सरिता हजारों जीव-जंतुओं का, हजारों मानवों का पोषण कर रही है। यह प्रभु की अनमोल देन है। उसे देखकर उसे भगवान की विराट सत्ता की स्मृति हो आई। सूर्यनारायण को भी प्रणाम करके 'सूर्य का भी सूर्य परमात्मा है, उसका प्रकाश अपने हृदय में प्रगट हो' - ऐसी भावना करके नदी में पाँच पैसे चढ़ाये तो उसका हृदय कितना शुद्ध और पवित्र हुआ ! उसके भाव कितने उन्नत हुए ! हृदय की त्यागवृत्ति और प्रेमवृत्ति दोनों का विकास हुआ। तुम अपनी कमाई का जो उपयोग करते हो, उससे तो तुम्हारी वृत्ति भोगप्रधान, विलासी बन जाती है। फिर भी तुम्हारे जैसे लोग उसकी श्रद्धा को अंधश्रद्धा कहकर उसका अपमान करते हैं लेकिन उसे अंधश्रद्धा कहना भी अंधश्रद्धा है। तुम लोग बीड़ी-सिगरेट-शराब में श्रद्धा करते हो और कितने पैसे खर्च कर देते हो ? तुम्हारी नजर में बहती सरिता का पानी हाइड्रोजन-ऑक्सीजन का मिश्रण है लेकिन इस भक्त की नजर में तो प्रभु की कृपा बह रही है, जो कितनों ही को जीवन देती है ! वे भक्त बाहर से भोलेभाले दिखते हैं किन्तु उनके पास जो भीतर की शांति और प्रेम है उतना तुम्हारे पास है क्या ? उसने पाँच पैसे नदी में चढ़ाकर उस विराट की स्मृति जगाई कि 'हे सर्वेश्वर ! सरिता में भी तू, सूर्यनारायण में भी तू, सबमें तू ही तू, तेरी लीला अपरंपार है मेरे प्रभु !' ऐसा करके उसने अपने दिल को प्रेम से और मधुरता से भर दिया है जबकि तुमने उसकी श्रद्धा को तुच्छ कहकर अपने हृदय को कुंठित कर लिया है। बोलो, किसने गँवाया और किसने सच्ची कमाई की ? उसने ही सच्ची कमाई कर ली है।''

> *जीवन के हर मौके पर अपने हृदय को हृदयेश्वर के प्रेम से, मधुरता से भरते रहोगे तभी तुम्हारी सच्ची कमाई होगी।*

जीवन के हर मौके पर तुम भी अपने हृदय को हृदयेश्वर के प्रेम से, मधुरता से भरते रहोगे तभी तुम्हारी

सच्ची कमाई होगी। यहाँ की रूपये-पैसे की कमाई का वास्तव में कोई मूल्य नहीं है क्योंकि **'खाली हाथों वे गये जिन्हें करोड और लाख।'** हाँ, अगर उन रूपये-पैसे को सत्कर्म में, सेवा में लगाओगे तो वह धन तुम्हें सच्ची कमाई का फल जरूर देगा। हृदय में हृदयेश्वर की प्रीति और आनंद जगाएगा।

★

संसार से सो छूट गया...

धन की जिसे नहीं चाह है, नहीं मित्र की परवाह है।
आसक्ति विषयों में नहीं, प्रारब्ध पर निर्वाह है ॥
सब विश्व मटियामेट कर, जो आप भी है मिट गया।
मिटकर हुआ है आप ही, संसार से सो छूट गया ॥

ऐसे संसार की आसक्तियों से मुक्त हुए महापुरुष अपने-आप में मस्त रहते हैं। संसार की चीज-वस्तुएँ या धन-पद-प्रतिष्ठा आदि आत्म-मस्ती के आगे कोई महत्त्व नहीं रखती हैं। इसलिए वे संसार से बेपरवाह होकर अपनी मौज में विचरते हैं।

गुरु गोविंदसिंह भी अपनी मौज में रहकर विचरण करते थे और धर्मकार्य में लगे रहते थे। एक बार वे घूमते-घामते यमुना किनारे गये। वहाँ किसी चट्टान पर बैठकर वे रब के आनंद में तल्लीन हो रहे थे। इतने में उनका प्यारा भक्त रघुनाथ वहाँ आ पहुँचा। रघुनाथ बहुत धनवान था और ऐश-आराम से जीनेवाला था। वह अपने साथ सोने के दो रत्नजडित कड़े गुरुजी को अर्पण करने के लिये लाया था।

गुरुजी के पास जाकर उसने प्रणाम किया और मानो बहुत कुछ सम्पत्ति भेंट कर रहा हो उस भाव से सोने के दो रत्नजड़ित कड़े देते हुए कहा : ''गुरुजी ! मेरी इस तुच्छ भेंट को आप स्वीकार कीजिए।''

उसने सोचा कि इतने मूल्यवान कड़े देखकर गुरुजी खूब खुश हो जाएँगे। वह खड़ा होकर देखता रहा कि गुरुजी क्या कहते हैं ?

गुरुजी ने एक कड़ा हाथ में लिया और अंगुली पर उसे गोल-गोल घुमाकर झटका लगाया तो कड़ा गया यमुना की बहती धारा में। अब रघुनाथ से रहा नहीं गया। वह भी कूद पड़ा नदी में और खूब आपा-धापी की लेकिन यमुना की बहती धारा में कड़ा कैसे हाथ लगे ?

वह तो बाहर निकलकर गुरुजी के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और पूछने लगा : ''गुरुजी ! वह रत्नजड़ित सोने का कड़ा कौन-सी जगह पर गिरा है ? आप जरा बता दीजिए तो मैं फिर से उसे ढूँढ़ निकालूँ।''

गुरुजी ने दूसरा कड़ा उठाया और नदी में वहीं पर फेंकते हुए कहा : ''वहीं फेंका है।'' यह देखकर रघुनाथ हक्का-बक्का-सा रह गया।

दुनियादार जहाँ सिर पटकते हैं।
आशिक वहाँ पर कदम रखते हैं ॥

दुनियादार संसार की चीज-वस्तुओं के लिये तो दिन-रात मेहनत करते हैं और 'कैसे उन्हें पा लें' - इसकी चिंता में लगे रहते हैं। जबकि प्रभु के प्यारे ऐसी नश्वर धन-दौलत या चीज-वस्तुओं पर कदम रखकर चल पड़ते हैं। कैसे बेपरवाह होते हैं वे !

रघुनाथ ने कड़े तो गुरुजी को अर्पण कर दिये थे फिर भी उनमें उसकी आसक्ति उतनी ही थी। 'मेरेपने' का भाव ज्यों-का-त्यों था। जब गुरुजी को कड़े अर्पण कर दिये तब वे गुरुजी के हो गये। गुरुजी उनका चाहे जो उपयोग करें, वे स्वतंत्र हैं। यह बात रघुनाथ भी अच्छी तरह जानता होगा। फिर भी गुरुजी ने कड़ा जब नदी में फेंक दिया तो उसके चेहरे का रंग उड़ गया। वह चिंता में पड़ गया कि अब कड़ा ढूँढेंगे कैसे ? क्योंकि उसमें से आसक्ति नहीं छूटी थी। आसक्ति ही दुःख का कारण है।

गुरु गोविंदसिंह ने कैसा अमूल्य धन पाया होगा कि रघुनाथ के कड़े की कोई कीमत ही नहीं रही उनके आगे ! आपके भी पास सोने के कड़े हों तो ऐसे ही फेंक दो यह मैं नहीं कहता हूँ, लेकिन सोने की, धन की आसक्ति को तो कृपा करके आप फेंक ही दीजिए... ज्ञान-सरिता की धारा में बहा दीजिए। नहीं तो मरते समय यह आसक्ति दुःख देगी। अगर आप संसार की आसक्ति को मिटाकर खुद भी मिटते जाओगे तो संसार से छूट जाओगे, मुक्त हो जाओगे।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ५९ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया सितम्बर तक अपना नया पता भिजवा दें।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

करने में सावधान

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा॥

जो कर्म अभानावस्था में होते हैं, उन कर्मों का संचय नहीं होता है। बाल्यावस्था में किये गये कर्मों का, मूढ़ावस्था में किये गये कर्मों का संचय नहीं होता है। पशु-पक्षियों के कर्मों का संचय नहीं होता है। जो अहंकार से रहित होकर कर्म करते हैं उनके कर्मों का संचय नहीं होता है। ज्ञानवानों के कर्मों का संचय नहीं होता है। ऐसे ही फल की इच्छा के बिना किये गये निष्काम कर्मों का भी संचय नहीं होता है।

कोई छोटा बच्चा नाचता-कूदता खेल रहा हो और नासमझी में वह किसी बच्चे का गला दबा दे तो उसके ऊपर दफा ३०२ का केस नहीं चलेगा। ज्यादा-से-ज्यादा उसे दो-चार चाँटे लगा देंगे। किसीने शराब पी हो, बेहोश अवस्था में हो और गालियाँ बकने लग जाये तो उसके ऊपर बदनक्षी का केस लगाना उचित नहीं होगा क्योंकि उसे कर्म करने का भान ही नहीं है, नशे-नशे में कर्त्तापन का भाव ही नहीं है। ज्ञानी महापुरुष भी अकर्त्ता भाव से कर्म करते हैं इसलिए उन्हें कर्मबन्धन नहीं लगता।

इसी प्रकार तुम जहाँ भी रहो, जो करो वह अकर्त्ता होकर करो तो तुम्हें भी कर्मबन्धन नहीं लगेगा। कर्त्ताभाव होता है तो चलते-फिरते कीड़े-मकोड़े मर जाएँ तो भी कर्म का संचय होता है। किसीको पानी पिलाओ तब भी और किसीका कुछ ले लो तब भी कर्म का संचय होता है। किन्तु अकर्त्ता भाव से कर्म करने पर वे ही कर्म बँधनकारक नहीं होते।

एक बार बुद्ध और उनके शिष्य घूमते-घामते कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक साँप को बहुत-सी चींटियाँ चिपककर काट रही थीं और साँप छटपटा रहा था।

शिष्यों ने पूछा : ''भन्ते ! ऐसा क्यों ? इतनी सारी चींटियाँ इस एक साँप को चिपककर काट रही हैं और इतना बड़ा साँप इन चींटियों से परेशान होकर छटपटा रहा है ! क्या यह अपने किन्हीं कर्मों का फल भोग रहा है ?''

बुद्ध : ''कुछ साल पहले हम इस तालाब के पास से गुजर रहे थे, तब एक मच्छीमार मछलियाँ पकड़ रहा था। हमने उसे कहा भी था कि पाप-कर्म मत कर। केवल पेट भरने के लिये जीवों की हिंसा मत कर लेकिन उसने हमारी बात नहीं मानी। वही अभागा मच्छीमार साँप की योनि में जन्मा है और उसके द्वारा मारी हुई मछलियाँ ही चींटियाँ बनी हैं और वे अपना बदला ले रही हैं। मच्छीमार निर्दोष जीवों की हिंसा का फल भुगत रहा है।''

> *''वही मच्छीमार साँप की योनि में जन्मा है। उसके द्वारा मारी हुई मछलियाँ ही चींटियाँ बनी हैं और वे अपना बदला ले रही हैं।''*

महाभारत के युद्ध के पश्चात् एक बार अत्यंत व्यथित हृदय से धृतराष्ट्र ने वेदव्यासजी से पूछा :

''भगवान ! यह कैसी विडंबना है कि सौ के सौ पुत्र मर गये और मैं अंधा बूढ़ा बाप जिंदा रह गया ? मैंने इस जन्म में इतने पाप तो नहीं किये हैं और पूर्व के कुछ पुण्य होंगे तभी तो मैं राजा बना हूँ। फिर किस कारण से यह घोर दुःख भोगना पड़ रहा है ?''

वेदव्यासजी आसन लगाकर बैठे और समाधि में लीन हुए। धृतराष्ट्र के पूर्वजन्मों को जाना तब पता चला कि पहले वह हिरन था, फिर हाथी हुआ, फिर राजा बना।

समाधि से उठकर उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा : ''आज से एक एक सौ चौबीस वर्ष पहले तू राजा

> *''तूने वहाँ आग लगा दी। साँप के बच्चे अग्नि से जलकर मर गये। सर्पिणी अंधी हो गई। तेरे उस कर्म का बदला इस जन्म में मिला है। तू अंधा बना है और तेरे सौ बेटे मर गये हैं।''*

था और शिकार करने के लिये जंगल में गया। वहाँ हिरन को देखकर उसके पीछे दौड़ा लेकिन तू हिरन का शिकार नहीं कर पाया। वह जंगल में अदृश्य हो गया। तेरे अहं को ठेस पहुँची। गुस्से में आकर तूने वहाँ आग लगा दी तो थोड़ा हरा-सूखा घास और सूखे पत्ते जल गये। वहीं पास में साँप का बिल था। उसमें साँप के बच्चे थे जो अग्नि से जलकर मर गये और सर्पिणी अंधी हो गई। तेरे उस कर्म का बदला इस जन्म में मिला है। इससे तू अंधा बना है और तेरे सौ बेटे मर गये हैं।''

तुम जहाँ भी रहो, जो भी करो लेकिन अपने परमात्म-स्वरूप को जानकर, अकर्त्ता होकर कर्म करोगे तो कोई कर्मबन्धन नहीं लगेगा।

★

पहली और अंतिम नमाज

एक बार स्वामी रामतीर्थ घूमते-फिरते सौन्दर्यधाम कश्मीर में पहुँच गये। स्वामीजी प्रकृति के प्रेमी थे। कश्मीर में प्रकृति ने खुले हाथ सौन्दर्य बिखेरा है। वे प्रेमानंद में मग्न होकर घूम रहे थे। रास्ते में एक फकीर से भेंट हो गई।

आपस में परिचय हो जाने के बाद फकीर भी स्वामीजी के साथ रहकर कश्मीर का आनंद लेने लगा। साथ में रहते हुए स्वामीजी के ध्यान में एक बात आई कि साँई एक बार भी नमाज अदा नहीं करते हैं। उनके मजहब में तो यह अच्छा नहीं कहलाता। वे तो मानते हैं कि दिन में पाँच बार नमाज अदा करना ही चाहिए।

साथ में घूमते-घूमते एक बार नमाज के बारे में बात चल पड़ी, तब मौका पाकर स्वामीजी ने स्मित करते हुए कहा : ''बुरा मत मानना, साँई! आप तो नमाज नहीं पढ़ते हो, अल्लाताला की बंदगी भी नहीं करते हो। ऐसा क्यों ?''

वह फकीर बोल पड़ा : ''मैं क्यों नमाज पढ़ूँ ? मैं कोई गुनाहगार नहीं हूँ कि मुझे खुदा के पास तोबाह पुकारना पड़े। जो गुनाहगार हो वह बंदगी करे। यहाँ तो दिल में ही नहीं, रोम-रोम से पाक परवरदिगार का नाम बिना रुके गूँजता रहता है।''

ऐसा करते-करते वे स्नेह-पूर्वक साथ-साथ बहुत घूमे। एक दिन अलग होने की बारी आई। तब फकीर ने स्वामी रामतीर्थ को उस पुरानी बात की याद दिलाते हुए कहा : ''स्वामीजी! आज मैं नमाज पढ़ूँगा। खुदाताला की बंदगी करूँगा। वैसे तो कोई गुनाह मैंने किया ही नहीं है। फिर भी अनजाने में कोई गलती हो गई हो तो उसके लिये तोबाह पुकारूँगा।''

फकीर ने अपना जामा जमीन पर बिछा दिया। पश्चिम दिशा की ओर घुटने टेककर बैठा और बोला : ''स्वामीजी! अब मैं नमाज अदा करता हूँ। अल्लाताला के कदमों में यह सिर झुक गया सो झुक गया, फिर उसे उठाना ही नहीं चाहिए न!''

ऐसा कहते हुए फकीर ने नमाज पढ़ना शुरू किया और नमाज पढ़ते-पढ़ते उसने देह छोड़ दिया।

स्वामीजी ने उस पाक परवरदिगार के औलिया को अत्यंत आदरपूर्वक वंदन किया।

ऐसी होती है सच्ची फकीरी!

वाह फकीरी! कौन अमीरी, दासी तेरे चरनों में।
राजा, रंक, जमींदार सब चाकर तेरी नजरों में॥

''अल्लाताला के कदमों में यह सिर झुक गया सो झुक गया, फिर उसे उठाना ही नहीं चाहिए न!'' ऐसा कहते हुए फकीर ने नमाज पढ़ना शुरू किया और नमाज पढ़ते-पढ़ते उसने देह छोड़ दिया।

★

सावधान रहो !

- *पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू*

विश्राम में अद्‌भुत बल है। कितना भी भोजन करो किन्तु बिना आराम के थकान नहीं मिटती है। शरीर की विश्रांति से शरीर की थकान मिटती है और चित्त की विश्रांति से जन्मों-जन्मों की मानसिक थकान मिटती है। मानसिक थकान मिटने से मन प्रेमरस से परिपूर्ण होने लगता है। विश्रांति से दोषों की निवृत्ति और आवश्यक सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। जैसे, बुढ़ापे में रोगप्रतिकारक शक्ति घटती है तो कई प्रकार की बीमारियाँ उभर आती हैं ऐसे ही हमारा मन जब कमजोर हो जाता है तो अलग-अलग विकारों का रोग प्रगट हो जाता है। फिर हम अपने को दीन-हीन और तुच्छ मानने लगते हैं। फलतः दीन-हीन और तुच्छ योनियों में भटकने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

शरीर की विश्रांति से शरीर की थकान मिटती है और चित्त की विश्रांति से जन्मों-जन्मों की मानसिक थकान मिटती है। मन प्रेमरस से परिपूर्ण होने लगता है। विश्रांति से दोषों की निवृत्ति और आवश्यक सामर्थ्य की प्राप्ति होती है।

यदि चित्त को विश्रांति दिलाने की कला आ जाये तो चित्त शुद्ध, साफ-सुथरा और पवित्र हो जायेगा। जैसे, आईना साफ हो तो उसमें प्रतिबिंब ठीक से दिखता है ऐसे ही विश्रांति से हमारा मन पवित्र हो जाता है तो परमेश्वर के स्वरूप की ठीक अनुभूति होती है।

आईना साफ हो तो उसमें प्रतिबिंब ठीक से दिखता है ऐसे ही विश्रांति से हमारा मन पवित्र हो जाता है तो परमेश्वर के स्वरूप की ठीक अनुभूति होती है।

भोग, सुविधाएँ, लापरवाही हमें खोखला बना देती हैं जबकि विघ्न-बाधाएँ और सतर्कता जीवन-संग्राम में विजयी और सजाग बनाती हैं।

जापान में एक प्रसिद्ध बूढ़ा था। एक बार उसने कुछ जवानों को बुलाकर कहा :

''इस पेड़ की आखिरी डाल तक कोई चढ़ सकता है ?''

जवानों में तो होड़ लग गई। एक जवान आखिरी डाल पर पहुँच गया, हालाँकि वह डाल खतरे से खाली न थी। वह जवान सोचने लगा : 'मैं इतनी खतरनाक जगह पर खड़ा हूँ और वह बूढ़ा देखता तक नहीं है ! बातों में लगा है !' वह जवान थोड़ी देर उस जीवन-मृत्यु के बीच झोंके खिलानेवाली डाल पर खड़ा रहा और फिर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। जब करीब १८-२० फीट दूरी बाकी रह गयी तब बूढ़ा बोला :

''ऐ जवान ! संभलकर उतरना... सावधानी से उतरना नहीं तो फ्रेक्चर हो जायेगा।''

जवान को हुआ कि यह बूढ़ा पागल है क्या ? जब सबसे ऊँची आखिरी डाल पर था, जीवन-मृत्यु के बीच खेल रहा था तब तो यह बातों में लगा रहा और अब जब जमीन के करीब हूँ तब कहता है 'सावधान रहना !'

वह युवक नीचे उतरा और बोला : ''आप कमाल के व्यक्ति हैं ! जहाँ खतरा था, मैं मृत्यु के करीब था वहाँ तो आपने कहा नहीं कि सावधान रहना और जब निश्चिंतता की जगह पर आया तब आपने कहा कि सावधान रहना !''

तब बूढ़ा बोला : ''मैं जमाने का खाया हुआ हूँ। मुझे बड़ा अनुभव है। कब बोलना और कब मौन रहना यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। कब संकेत करना यह भी मैं जानता हूँ। जब तुम आखिरी डाल पर थे तब तुम स्वयं ही सावधान थे। तब मुझे कहने की जरूरत ही न थी लेकिन जब नीचे उतरे, थोड़ी निश्चिंत

जगह पर आये तभी लापरवाही की संभावना आ जाती है और जब मनुष्य लापरवाह हो जाता है तभी गड़बड़ी होती है। वह लापरवाह होता है तभी गिरता है।''

> *''जब तुम आखिरी डाल पर थे तब तुम स्वयं ही सावधान थे। तब मुझे कहने की जरूरत ही न थी लेकिन जब नीचे उतरे, थोड़ी निश्चिंत जगह पर आये तभी लापरवाही की संभावना आ जाती है और जब मनुष्य लापरवाह हो जाता है तभी गड़बड़ी होती है, तभी वह गिरता है।''*

भोग व्यक्ति को भीतर से कमजोर कर देते हैं। जितनी ऐहिक सुख-सुविधा और ऐश-आराम की चीजें मिल जाती हैं और आदमी अपने को सुखी करने की होड़ में लगता है उतना ही वह अपने लिए भविष्य में दुःख की खाई खोदता चला जाता है। इसलिए मनुष्य को सदैव सावधान रहना चाहिए कि मन में विषय-विकार कहीं डेरा तो नहीं डाल रहे हैं ? दूसरों का ऐश-आराम देखकर हमारा मन कहीं ऐश-आराम की गंदी ख्वाहिश मैं तो नहीं मर रहा है ? अगर दूसरों का कुछ देखकर अपने में गंदगी आने लगे तो फिर दूसरों के गुण देखो। सोचो : 'जैसी समाधि बुद्ध की लगी ऐसी हमारी कब लगेगी। महावीर की नाईं हम निर्विकल्प समाधि में कब पहुँचेंगे ?' राजा भर्तृहरि कहते हैं : ''हे प्रभु ! मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं इस राज-पाट के भोग-विलास की खट्पट से बचकर, एकान्त अरण्य में किसी गिरि-गुफा में बैठा रहूँगा और 'शिव...शिव...' करके शांत आत्मा में विश्रांति पाकर समाधिस्थ हो जाऊँगा ? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि जंगल के बूढ़े हिरण मेरे शरीर को शिला समझकर, पत्थर की मूर्ति समझकर अपने सींगों की खुजली मिटाने के लिए इस शरीर से घर्षण करेंगे ? उन्हें भी संकोच न हो और मुझे भी पता न चले। ऐसी मेरी निर्विकल्प समाधि के दिन कब आयेंगे। भोलेनाथ ! क्या मैं जीवनभर इन्हीं भोग-विलासों में पड़ा रहूँगा ?''

> *दूसरों का ऐश-आराम देखकर हमारा मन कहीं ऐश-आराम की गंदी ख्वाहिश में तो नहीं मर रहा ?*

जब मनुष्य बाहर की निंदा-स्तुति को सत्य समझने लगता है, स्वीकार करने लगता है, तब भीतर से खोखला होना शुरू हो जाता है। बाहर की वाहवाही को अगर तुमने सच्चा समझा तो कमजोर हो जाओगे। अतः ऐसे किन्हीं आत्मानुभव से तृप्त सद्गुरु को खोज लो ज़ो कि तुम्हारी वाहवाही के बीच भी लगाम खींचकर तुम्हारे मन को संयत कर सकें। इसीमें तुम्हारा कल्याण है।

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो साँई को त्रास।
सूरज जब गर्मी करे, तब बरसन की आस॥

★ जिनके सान्निध्य में आपको आध्यात्मिक उन्नति महसूस हो, जिनके वक्तव्य से आपको प्रेरणा मिले, जो आपके संशयों को दूर कर सकें, जो काम, क्रोध, लोभ से मुक्त हों, जो निःस्वार्थ हों, प्रेम बरसानेवाले हों, जो अहंपद से मुक्त हों, जिनके व्यवहार में गीता, भागवत, उपनिषदों का ज्ञान छलकता हो, जिन्होंने प्रभुनाम की प्याउ लगाई हो उन्हें आप गुरु करना। ऐसे जागृत पुरुष की शरण की खोज करना।

★ अगर आपको नल से पानी पीना हो तो आपको स्वयं नीचे झुकना पड़ेगा। उसी प्रकार अगर आपको गुरु के पवित्र मुख से बहते हुए अमरत्व के पावन अमृत का पान करना हो तो आपको विनम्रता के प्रतीक बनना पड़ेगा।

★ गुरु की सेवा करके आशीर्वाद प्राप्त करने के इच्छुक साधकों को कुसंग से अवश्य दूर रहना चाहिए।

– स्वामी शिवानंदजी

❋ जैसे, बुद्धिमान यात्री यात्रा में सभी से प्रेम का संबंध रखता हुआ जल्दी यात्रा पूर्ण करना चाहता है क्योंकि उसको पल-पल घर की याद आती है और घर के लिए जिसकी व्याकुलता बढ़ रही हो, वह रास्ते का विलंब कैसे सहन करेगा ? ठीक उसी प्रकार हे साधक ! तू भी अपनी साधनारूपी महायात्रा को सावधानीपूर्वक पूर्ण करके पार हो जा।

❋ तुम्हारे जीवन का प्रत्येक श्वास, विचार, क्रिया तथा प्रत्येक पदार्थ भगवान की सेवा में ही लगना चाहिए, तभी उनकी सार्थकता है। नहीं तो 'व्यर्थ' ही नहीं, वे 'अनर्थरूप' ही हैं। – श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

स्वर्ग का अधिकारी

मैंने सुनी है एक कथा :

कुछ लोग स्वर्ग के द्वारा पर कतार में खड़े थे और द्वार खटखटाये जा रहे थे। थोड़ी देर में एक देवदूत ने द्वार से झाँका और पूछा :

''क्या बात है ? कहाँ से आये हो ?''

''पृथ्वी पर से आये हैं।''

''कौन-सी पृथ्वी से ? किस इलाके से आये हो और तुमने कौन-सा अच्छा काम किया है ?''

एक आदमी आगे आया और बोला : ''मैं गाँव का मुखिया था, सरपंच था।''

देवदूत : ''अच्छा... मुखिया था, तो सेवा-भक्ति के द्वारा लोगों को भगवान की तरफ मोड़ा कि अपना अहं सजाने के लिए मुखिया बना था ? यह जरा जाँचना पड़ेगा।''

दूसरे आदमी से पूछा तो वह बोला : ''मैं राजा था।''

देवदूत : '' तुमने राज्य किया तो भोग-विलास करके, ऐश-आराम करके नारकीय योनि में जाने का कार्य किया था या लोगों के आँसू पोंछकर, लोकेश्वर को पाने का कार्य किया था ? किसी संत पुरुष के द्वार पर गये थे ?''

भूतपूर्व राजा : ''नहीं। किसी संत के द्वार पर तो नहीं गया था।''

देवदूत : ''जरा खिसको।''

फिर तीसरे आदमी से पूछा तो उसने कहा : ''मैंने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी है। मेरी तीन फैक्ट्रियाँ थीं, उसे तीनों लड़कों को दान कर दिया। जो फिक्स डिपोजिट थी उसे जमाइयों को दान कर दिया और आभूषण पत्नी को दान कर दिया।''

देवदूत : ''यह सब इकट्ठा करने में जो पाप हुए वे ?''

आदमी : ''उसका तो मुझे पता नहीं।''

देवदूत : ''चल, दूर हट। मोह-ममता से पैदा किये परिवार को वस्तु देना क्या दान माना जाता है ? मूर्ख कहीं का !''

फिर एक महिला आगे आयी और बोली : ''मैं एकादशी का व्रत करती थी।''

देवदूत : ''अच्छा ! एकादशी के व्रत के दिन जप-ध्यान करती थी ?''

महिला : ''नहीं। मैं एकादशी के दिन व्रत करके बारस के दिन कन्याओं को जिमाती थी और उन्हें टका देती थी।''

देवदूत : ''अच्छा... वह टका अपने परिवार की कन्याओं को देती थी कि अनजान कन्याओं को देती थी ? व्रत परमात्मा को पाने के लिए करती थी कि 'मैं धार्मिक हूँ' यह कहलाने के लिए करती थी, जरा देखना पड़ेगा।''

एक झुकी हुई कमरवाली बूढ़ी माई एक ओर आँसू बहाती हुई खड़ी थी। उस पर देवदूत की नजर पड़ी तब वह माई बोली :

''भैया ! मैं तो गलती से इधर आ गयी हूँ। मुझे तो तू नरक में ही भेज दे। मैं कोई मुखिया या राजा नहीं थी। मैंने एकादशी भी नहीं की। मैं तो गलती से यहाँ आ गयी हूँ।''

देवदूत : ''माताजी ! आखिर तुमने किया क्या है ?''

बुढ़िया : ''कुछ नहीं। गाँव में एक संत आये थे। मैंने उनके दो वचन सुने और सोचा कि 'सब कुछ ईश्वर का ही है अतः ईश्वर जो देता था, कर लेती थी। ईश्वर ही सब करवाता है तो फिर 'मैंने किया' यह क्यों सोचूँ ? अतः भैया ! मुझे भले ही नरक में भेज दो किन्तु एक काम करना।''

इन्द्र ने कहा : ''ऐसी महान् विभूति को तो बड़े आदर से स्वर्ग में ले आओ। उनकी चरणरज से तो स्वर्ग का भी पुण्य बढ़ जायेगा क्योंकि उसने संतों का संग किया है, सत्संग किया है।''

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

स्वर्ग का अधिकारी

मैंने सुनी है एक कथा :

कुछ लोग स्वर्ग के द्वारा पर कतार में खडे थे और द्वार खटखटाये जा रहे थे। थोडी देर में एक देवदूत ने द्वार से झाँका और पूछा :

''क्या बात है ? कहाँ से आये हो ?''

''पृथ्वी पर से आये हैं।''

''कौन-सी पृथ्वी से ? किस इलाके से आये हो और तुमने कौन-सा अच्छा काम किया है ?''

एक आदमी आगे आया और बोला : ''मैं गाँव का मुखिया था, सरपंच था।''

देवदूत : ''अच्छा... मुखिया था, तो सेवा-भक्ति के द्वारा लोगों को भगवान की तरफ मोड़ा कि अपना अहं सजाने के लिए मुखिया बना था ? यह जरा जाँचना पड़ेगा।''

दूसरे आदमी से पूछा तो वह बोला : ''मैं राजा था।''

देवदूत : '' तुमने राज्य किया तो भोग-विलास करके, ऐश-आराम करके नारकीय योनि में जाने का कार्य किया था या लोगों के आँसू पोंछकर, लोकेश्वर को पाने का कार्य किया था ? किसी संत पुरुष के द्वार पर गये थे ?''

भूतपूर्व राजा : ''नहीं। किसी संत के द्वार पर तो नहीं गया था।''

देवदूत : ''जरा खिसको।''

फिर तीसरे आदमी से पूछा तो उसने कहा : ''मैंने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी है। मेरी तीन फैक्ट्रियाँ थीं, उसे तीनों लड़कों को दान कर दिया। जो फिक्स डिपोजिट थी उसे जमाइयों को दान कर दिया और आभूषण पत्नी को दान कर दिया।''

देवदूत : ''यह सब इकट्ठा करने में जो पाप हुए वे ?''

आदमी : ''उसका तो मुझे पता नहीं।''

देवदूत : ''चल, दूर हट। मोह-ममता से पैदा किये परिवार को वस्तु देना क्या दान माना जाता है ? मूर्ख कहीं का !''

फिर एक महिला आगे आयी और बोली : ''मैं एकादशी का व्रत करती थी।''

देवदूत : ''अच्छा ! एकादशी के व्रत के दिन जप-ध्यान करती थी ?''

महिला : ''नहीं। मैं एकादशी के दिन व्रत करके बारस के दिन कन्याओं को जिमाती थी और उन्हें टका देती थी।''

देवदूत : ''अच्छा... वह टका अपने परिवार की कन्याओं को देती थी कि अनजान कन्याओं को देती थी ? व्रत परमात्मा को पाने के लिए करती थी कि 'मैं धार्मिक हूँ' यह कहलाने के लिए करती थी, जरा देखना पड़ेगा।''

इन्द्र ने कहा : ''ऐसी महान् विभूति को तो बड़े आदर से स्वर्ग में ले आओ। उनकी चरणरज से तो स्वर्ग का भी पुण्य बढ़ जायेगा क्योंकि उसने संतों का संग किया है, सत्संग किया है।''

एक झुकी हुई कमरवाली बूढ़ी माई एक ओर आँसू बहाती हुई खड़ी थी। उस पर देवदूत की नजर पड़ी तब वह माई बोली :

''भैया ! मैं तो गलती से इधर आ गयी हूँ। मुझे तो तू नरक में ही भेज दे। मैं कोई मुखिया या राजा नहीं थी। मैंने एकादशी भी नहीं की। मैं तो गलती से यहाँ आ गयी हूँ।''

देवदूत : ''माताजी ! आखिर तुमने किया क्या है ?''

बुढ़िया : ''कुछ नहीं। गाँव में एक संत आये थे। मैंने उनके दो वचन सुने और सोचा कि 'सब कुछ ईश्वर का ही है अतः ईश्वर जो देता था, कर लेती थी। ईश्वर ही सब करवाता है तो फिर 'मैंने किया' यह क्यों सोचूँ ? अतः भैया ! मुझे भले ही नरक में भेज दो किन्तु एक काम करना।''

देवदूत : ''क्या ?''

बुढ़िया : ''नरक में तो भेजना लेकिन ऐसे लोगों के नरक में भेजना, जहाँ कहीं संत का सत्संग मिल जाये या तो संत के प्यारे मिल जायें।''

देवदूत भागा इन्द्र के पास और जाकर सारी हकीकत कही। तब इन्द्र ने कहा :

''ऐसी महान् विभूति को तो बड़े आदर से स्वर्ग में ले आओ। उनकी चरणरज से तो स्वर्ग का भी पुण्य बढ़ जायेगा क्योंकि उसने संतों का संग किया है, सत्संग किया है।''

सत्संग बड़ी चीज है। जो धन-दौलत, पुत्र-परिवार आदि से कभी नहीं मिलती वह सच्ची शांति, वह सच्चा सुख, वह सच्चा आनंद अगर मिलता है तो केवल सत्संग से, संत-महापुरुषों के संग से ही मिलता है। अतः प्रयत्नपूर्वक सत्संग करना ही चाहिए। नारकीय वातावरण में भी सत्संग करना ही चाहिये।

★

क्षुद्र स्वार्थपूर्ति हेतु देश का बलिदान !

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी ने कहा है :

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता।

'जीवों का प्रथम तो नरजन्म ही दुर्लभ है, उसमें भी पुरुषत्व और उसमें भी ब्राह्मणत्व का मिलना दुर्लभ है।'

यह तो उन्होंने अध्यात्म विद्या की प्राप्ति के उद्देश्य को सामने रखकर कहा है लेकिन ऐसी दुर्लभताओं को पाकर भी जो लोग आध्यात्मिकता तो क्या अपना सामान्य धर्म-कर्म भी नहीं निभा पाते हैं उनके दुर्भाग्य का तो कहना ही क्या ? पुण्यभूमि भारत में जन्म पाना भी दुर्लभ है, ऐसा कहा गया है। ऐसे भारत देश की आज क्या दशा हो गई है ? भारत देश के इतने पतन का कारण क्या है ? इस देश में जन्म पाकर भी जो क्षुद्र कामनापूर्ति और निजी स्वार्थवश, मनुष्यत्व की रेखा को लाँघकर नीचे गिर गये, ऐसे लोगों के कारण भारत की दुर्दशा हो गई है। इतिहास में ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जो मनुष्य जाति के लिये कलंकरूप साबित हुए हैं। सोमनाथ का मंदिर जब लूटा गया, तब उसमें भी ऐसा ही धर्मभ्रष्ट और कर्त्तव्यच्युत शिवदर्शी नाम का व्यक्ति निमित्त बना था।

इस देश में जन्म पाकर भी जो क्षुद्र कामनापूर्ति और निजी स्वार्थवश, मनुष्यत्व की रेखा को लाँघकर नीचे गिर गये, ऐसे लोगों के कारण भारत की दुर्दशा हो गई है।

सोमनाथ का मंदिर लूटने के लिये जब महमूद गजनवी ने आक्रमण किया, उस वक्त राजा भीम का राज्य था। राजा भीम शूरवीर था। अपने राज्य की प्रजा की सुख-सुविधा और सुरक्षा का खूब ख्याल रखता था। धर्मस्थानों की तो विशेषरूप से सुरक्षा करता था। उन दिनों मंदिरों में कन्याएँ अर्पण की जाती थीं, जिन्हें देवदासी कहते थे। वे मंदिर के देव के आगे नृत्य करती थीं और मंदिर के खर्च से पाली-पोसी जाती थीं। अभी भी कहीं-कहीं ऐसी प्रथा चल रही होगी लेकिन उसमें पवित्रता कहाँ तक टिक पाई होगी ? पता नहीं है।

सोमनाथ के मंदिर में चौला नाम की देवदासी बड़ी सुंदर थी और उसकी नृत्यकला भी बढ़िया थी। मंदिर के पुजारी का पुत्र शिवदर्शी चौला पर मोहित था। वह उससे शादी करना चाहता था।

जब महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया तब, जैसे हाथी पर छलांग मारकर शेर उसे झकझोर दे, ऐसे ही राजा भीम ने धर्मस्थान की रक्षा के लिए गजनवी के सैनिकों पर धावा बोल दिया। चौला मंदिर के छज्जे पर खड़ी रहकर यह देख रही थी। गजनवी ने खूब कोशिश की पर मंदिर में प्रवेश न कर पाया। उसके सैनिक हताहत होने लगे। रात्रि का समय हुआ। उसने अपने साथियों से कहा :

''अब प्राण बचाने हैं तो खूंटे खोल दो। डेरा उठा लो। हम जल्दी वापस लौट जाये इसीमें हमारा भला है।''

यह गुपतगू सुनकर शिवदर्शी आग-बबूला हो गया। उसने गाँठ बाँध ली: 'अब मंदिर जाए तो जाए... धरम-करम जाए तो जाए पर चौला को तो मैं प्राप्त करके ही रहूँगा।'

देवदासी चौला ने धर्मस्थान की रक्षा के लिए जूझते हुए राजा भीम की शूरवीरता देखी और वह उसे मन-ही-मन चाहने लगी। जब राजा भीम मिले तब उसने कहा :

''राजन् ! धर्म की रक्षा के लिये आपने जो शौर्य

दिखाया है, उससे मेरा दिल आपको चाहने लगा है। हालाँकि मेरा नृत्य देखकर कई लोग मुझपर फिदा हैं लेकिन सम्राट ! मैं तो आपको ही चाहती हूँ।''

राजा भीम ने कहा : ''चौला ! जिस दिन से देव के आगे तुम्हारा नृत्य मैंने देखा है उसी दिन से मेरे दिल ने भी तेरे लिये जगह बना रखी है।''

राजा भीम और चौला की यह गुफ्तगू सुनकर शिवदर्शी आग-बबूला हो गया। उसने गाँठ बाँध ली कि : 'अब मंदिर जाए तो जाए... धरम-करम जाए तो जाए पर चौला को तो मैं प्राप्त करके ही रहूँगा।'

गजनवी ने म्यान में से तलवार खींची : "मूर्ख ! तू अपने धर्म से, अपने शिव से, अपने राजा से, अपने देश से वफादार नहीं रहा तो मुझसे कब तक वफादार रहेगा ? तुझे तो मरना ही चाहिए।"

शिवदर्शी ने रातों-रात अपना एक आदमी गजनवी के पास भेजा और कहलवाया : ''बाहर रहकर लड़ने से तुम क़भी जीत नहीं पाओगे। मंदिर में आने का गुप्त रास्ता हम तुम्हें बताएँगे। तुम अपना सैन्य ले आओ और गुप्त रास्ते से भीतर आकर राजा भीम को परास्त कर दो। फिर हम मित्र बनकर रहेंगे।''

गजनवी के सैनिक खूंटे खोलकर डेरा उठाने की तैयारी में थे तब गजनवी ने कहा : ''ठहरो। शिवदर्शी मंदिर के मुख्य पुजारी का पुत्र है। उसकी बात की सच्चाई जान लेनी चाहिए।'' उसने अपने दो-चार आदमी उसके साथ भेजे और गुप्त मार्ग देख लिया। रातों-रात तैयारियाँ कर लीं। सबेरे बाहर से युद्ध छेड़ दिया। राजा भीम फिर से युद्ध करने लग गये लेकिन अब घर का ही व्यक्ति फूट चुका था।

प्रकृति और परमात्मा सज्जनों के पक्ष में होते हैं। इसलिए हमें हिम्मत रखकर सावधान होना चाहिए। सतर्क रहना चाहिए, सदाचार का जीवन जीना चाहिए और देश से वफादार रहना चाहिए। दुराचारियों की पोल खोज कर औरों को भी सावधान करना चाहिए। तब ही स्वतंत्रता की रक्षा होगी।

गुप्त मार्ग से गजनवी की सेना अन्दर भी पहुँच गई थी। शत्रु की बाहर की सेना के साथ तो राजा भीम जूझ ही रहा था, तब तक अन्दर भी शत्रु सेना घुस गई थी। दोनों तरफ की सेनाओं के बीच वह कैसे टिक पाता ? फिर भी वह वीर लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुआ और गजनवी ने सोमनाथ का मंदिर लूट लिया।

महमूद गजनवी के आदमियों ने जब परिचय करवाया, तब शिवदर्शी ने हाथ फैलाकर कहा :

''आओ मित्र ! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हें विजयी बनाने के लिये मैंने ही आदमी भेजा था।''

हिन्दू ने ही हिन्दू मंदिर के विनाश का संदेशा भेजा तो क्यों भेजा ? शिवदर्शी ने अपनी क्षुद्र कामनापूर्ति में विघ्न देखा। चौला को पाने की कामना ने उसे ऐसा अंधा बना दिया कि वह आगे-पीछे का कुछ सोच ही नहीं सका। जिसका जो होना हो भले हो, इतिहास में काले अक्षरों से नाम लिखा जाये तो भले लिखा जाये पर मेरी कामनापूर्ति होनी चाहिए।

जब शिवदर्शी ने गजनवी से मिलने के लिए हाथ फैलाये तो गजनवी ने एक मिनट उसकी ओर ताका, फिर म्यान में से तलवार खींचकर यह कहकर उसका सिर उड़ा दिया :

''मूर्ख ! तू अपने धर्म से वफादार नहीं रहा, अपने शिव से वफादार नहीं रहा, अपने राजा से वफादार नहीं रहा, अपने देश से वफादार नहीं रहा तो तू मुझसे कब तक वफादार रहेगा ? तुझे तो मरना ही चाहिए।''

शिवदर्शी तो मर गया पर भीम को भी बलि होना पड़ा और हमारी संस्कृति को कितना सहना पड़ा ! बस, तबसे देश का दुर्भाग्य शुरू हो गया। फिर तो मानो उन्हें चसका ही लग गया। जैसे बिना मालिक का खेत हो, जो भी आये, जितना मन में आये, जैसे मन में आये, लूटता चला जाय और अभी भी ऐसा ही हो रहा है। अभी भी हम सुरक्षित नहीं हैं। बाहर से बोर्डर पर तो सेना लगी हुई दिखती है पर भीतर से हम खोखले हुए जा रहे हैं। शिवदर्शी जैसे घरभेदी आदमियों के कारण देश और देशवासियों की बरबादी हो रही है। फिरभी हम निराश नहीं हुए हैं, क्योंकि हमारे पास आध्यात्मिक बल है, कुछ

(शेष पृष्ठ ७ पर)

बीजमंत्रों के द्वारा स्वास्थ्य-सुरक्षा

भारतीय संस्कृति ने आध्यात्मिक विकास के साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

आज कल सुविधाओं से संपन्न मनुष्य कई प्रकार की चिकित्सा-पद्धतियों को आजमाने पर भी शारीरिक रोगों व मानसिक समस्याओं से मुक्त नहीं हो सका। एलोपेथी की जहरीली दवाइयों से ऊबकर अब पाश्चात्य जगत के लोग Alternative Medicine के नाम पर प्रार्थना, मंत्र, योगासन, प्राणायाम आदि से हार्ट अटेक और कैंसर जैसी असाध्य व्याधियों से मुक्त होने में सफल हो रहे हैं। अमेरिका में एलोपेथी के विशेषज्ञ डॉ. हर्बट बेन्सन और डॉ. दीपक चोपड़ा ने एलोपेथी को छोड़कर निर्दोष चिकित्सा-पद्धति की ओर विदेशियों का ध्यान आकर्षित किया है जिसका मूल आधार भारतीय मंत्रविज्ञान है। ऐसे वक्त हम लोग एलोपेथी की दवाइयों की शरण लेते हैं जो प्रायः मरे हुए पशुओं के यकृत (कलेजा), मीट एक्सट्रेक्ट, माँस, मछली के तेल जैसे अपवित्र पदार्थों से बनायी जाती हैं। आयुर्वैदिक औषधियाँ, होमियोपैथी की दवाइयाँ और अन्य चिकित्सा-पद्धतियाँ भी मंत्रविज्ञान जितनी निर्दोष नहीं हैं।

हर रोग के मूल में पाँच तत्त्व यानी पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश की ही विकृति होती है। मंत्रों के द्वारा इन विकृतियों को आसानी से दूर करके रोग मिटा सकते हैं।

डॉ. हर्बट बेन्सन ने बरसों के शोध के बाद कहा है : Om a day, keeps doctors away. अतः ॐ **का जप करो और डॉक्टर को दूर ही रखो।**

विभिन्न बीजमंत्रों की विशद जानकारी प्राप्त करके हमें अपनी सांस्कृतिक धरोहर का लाभ उठाना चाहिए।

★ पृथ्वी तत्त्व ★

इस तत्त्व का स्थान मूलाधार चक्र में है। शरीर में पीलिया, कमलवायु आदि रोग इसी तत्त्व की विकृति से होते हैं। भय आदि मानसिक विकारों में इसकी प्रधानता होती है।

विधि : पृथ्वी तत्त्व के विकारों को शांत करने के लिए 'लं' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए किसी पीले रंग की चौकोर वस्तु का ध्यान करें।

लाभ : इससे थकान मिटती है। शरीर में हल्कापन आता है। उपरोक्त रोग, पीलिया आदि शारीरिक व्याधि एवं भय, शोक, चिन्ता आदि मानसिक विकार ठीक होते हैं।

★ जल तत्त्व ★

स्वाधिष्ठान चक्र में जल तत्त्व का स्थान है। कटु, अम्ल, तिक्त, मधुर आदि सभी रसों का स्वाद इसी तत्त्व के कारण आता है। असहनशीलता, मोहादि विकार इसी तत्त्व की विकृति से होते हैं।

विधि : 'वं' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए चाँदी की भाँति सफेद किसी अर्धचन्द्राकार वस्तु का ध्यान करें।

लाभ : इस प्रकार करने से भूख-प्यास मिटती है व सहनशक्ति उत्पन्न होती है। कुछ दिन यह अभ्यास करने से जल में डूबने का भय भी समाप्त हो जाता है। कई बार 'झूठी' नामक रोग हो जाता है जिसके कारण पेट भरा रहने पर भी भूख सताती रहती है। ऐसा होने पर भी यह प्रयोग लाभदायक है। साधक यह प्रयोग करे जिससे कि साधना काल में भूख-प्यास साधना से विचलित न करे।

★ अग्नि तत्त्व ★

मणिपुर चक्र में अग्नितत्त्व का निवास है। क्रोधादि मानसिक विकार, मंदाग्नि, अजीर्ण व सूजन आदि शारीरिक विकार इस तत्त्व की गड़बड़ी से होते हैं।

विधि : आसन पर बैठकर 'रं' बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए अग्नि के समान लाल प्रभावाली त्रिकोणाकार वस्तु का ध्यान करें।

लाभ : इस प्रयोग से मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि विकार दूर होकर भूख खुलकर लगती है व धूप तथा अग्नि का भय मिट जाता है। इससे कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने में

(शेष पृष्ठ १६ पर)

जो भी कहें वे आत्मशक्ति से...

संतों के श्रीमुख से निकले वचन कभी मिथ्या नहीं होते... इस बात का अनुभव मुझे तब हुआ, जब मैं P. S. I. (पुलिस सब-इन्स्पैक्टर) बना। G. P. S. C (गुजरात पब्लिक सर्विस कमीशन) की लिखित परीक्षा एवं शारीरिक परीक्षा में तो मैं उत्तीर्ण हो चुका था किन्तु तब मैंने सोचा तक नहीं था कि मैं P. S. I. (पुलिस सब-इन्स्पैक्टर) हो सकूँगा। लेकिन जब मुझे 'इन्टरव्यू कॉल' मिला तब मैं बहुत खुश हो गया एवं आश्रम के साधक श्री वासुभाई को बताया कि 'इन्टरव्यू' से पहले मैं पूज्यश्री से आशीर्वाद लेना चाहता हूँ।

उस वक्त पूज्यश्री बाँसवाड़ा में पूनम मनानेवाले थे अतः मैं अपने पिताजी के साथ बाँसवाड़ा पहुँच गया। जब पूज्यश्री के दर्शन के लिए कतार में पहुँचा तब पूज्यश्री ने प्रसादरूप में एक सेवफल देते हुए कहा :

''तू P. S. I. बन जा।''

पहले मुझे शंका बनी रहती थी कि ऐसी नौकरी में जाऊँ कि नहीं ? किन्तु पूज्यश्री के इस आशीर्वाद के बाद मेरी शंका पूर्णतया निर्मूल हो चुकी थी।

जब 'इन्टरव्यू' का परिणाम आया, तब मेरा नाम 'वेटिंग लिस्ट' में था। उस वक्त मुझे लगा कि इसीमें मेरा हित होगा। उसके लगभग एक वर्ष के बाद मुझे बुलाया गया एवं जूनागढ़ में P. T. C. की एक वर्ष की ट्रेनिंग पूरी करके आज मैं P. S. I. हो गया हूँ। पिछले छः महीने से मेरी पोस्टिंग खेड़ा जिले के पेटलाद टाऊन में हो चुकी है। इस प्रकार पूज्यश्री का आशीर्वाद साकार हो उठा कि 'तू P. S. I. बन जा।'

पूज्यपाद सद्गुरुदेव के श्रीमुख से निकले वचन कभी मिथ्या नहीं होते...

जो भी कहें वे आत्मशक्ति से हो जाये पत्थर पे लकीर ...

इसका अनुभव कर हृदय अत्यंत आनंदित हो उठता है। अब तो... पूज्य बापू मुझे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहेंगे एवं मैं किसी भी गलत राह पर न चल पड़ूँ इसकी सँभाल रखेंगे इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। हरि ॐ...

- राजेश आर. बंसल
पुलिस सब-इन्स्पैक्टर
पेटलाद टाऊन, जिला खेड़ा (गुज.).

जप ले हरिनाम की माला...

जप ले हरिनाम की माला।
भवसागर से तर जायेगा॥

सुख दुःख होते एक समाना।
सब कर्मों का खेल है बन्दे॥
प्रभु से अपना मेल मिला ले।
वर्ना काया जेल है बन्दे॥
जग में अपना कौन पराया।
ना समझा तो फँस जायेगा॥

भयकारी है पथ जीवन का।
मन में दीप जलाये रखना॥
सम्मुख हो जब कोई बाधा।
दृढ़ विश्वास जगाये रखना॥
हर लेंगे विपदा बनवारी।
खाली दामन भर जायेगा॥

प्रभु से कैसी लाज शरम है।
अर्पण कर दे सब कुछ अपना॥
बिन माँगे ही पा लेगा तू।
पूरा होगा हर इक सपना॥
अनुचर बन जा श्रीचरणों का।
सीधे हरि के घर जायेगा॥

- प्रकाश 'सूना'
मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

*

संस्था समाचार

राजकोट : स्वतंत्रता दिवस की स्वर्ण जयंती के शुभ अवसर पर दिनांक १५ से १७ अगस्त '९७ तक राजकोट आश्रम में पूज्य बापूजी के सत्संग कार्यक्रम का आयोजन हुआ । इस अवसर पर दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये हजारों श्रद्धालुओं ने ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्य बापूजी की अमृतवाणी का लाभ लिया।

अमदावाद : १७ अगस्त दोपहर को ही पूज्य बापूजी चार्टेड प्लेन द्वारा राजकोट से अमदावाद आश्रम पहुँचे । देश-विदेश से आये हुए पूनम-व्रतधारी और श्रद्धालुजनों ने दिनांक १८ अगस्त को रक्षाबंधन के पावन पर्व पर संत शिरोमणि पूज्य बापूजी की पीयूषवाणी का लाभ लिया।

सूरत : जन्माष्टमी के पावन पर्व पर दिनांक २२ से २५ अगस्त तक विशाल भक्त-समुदाय ने जीवन्मुक्त संत पूज्य बापूजी की अमृतवाणी का लाभ लिया।

जन्माष्टमी के पावन दिवस पर मटकी फोड़ कार्यक्रम में १५० मटकियों को फोड़ हजारों लोगों को मक्खन-मिश्री का प्रसाद लुटाया और '**नंद घर आनंद भयो जय कन्हैया लाल की**' के उद्घोषों से पूरा सत्संग-पांडाल गुंजायमान हो उठा था। संतप्रवर ने इस विशाल जनमेदनी को संबोधित करते हुए कहा : "**जन्माष्टमी के इस पावन पर्व पर तेजस्वी पूर्णावतार श्रीकृष्ण की जीवन-लीलाओं, उपदेशों व उनकी समता एवं उनके साहसिक आचरण से पाठ सीखो। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में सम रहो व प्रसन्न रहो। स्वयं अपने धर्म में स्थित रहकर दूसरों को भी धर्म के रास्ते पर मोड़ते रहो। सफल जीवन जीने की पद्धति यही है।**" इस पावन पर्व पर सूरत शहर के वरिष्ठ अधिकारियों एवं गणमान्य नागरिकों ने माल्यार्पण कर पूज्य बापूजी का स्वागत किया।

पू. बापू के अन्य सत्संग कार्यक्रम

(१) **अलवर में** : १० से १४ सितम्बर '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. शाम ४ से ६. न्यू हायर सेकंडरी स्कूल, भगतसिंह सर्किल, अलवर। फोन : (०१४४) ३३००३१, ३३०५७२.

(२) **चण्डीगढ़ में** : १७ से २१ सितम्बर '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. शाम ४ से ६. सेक्टर २०बी का मैदान, लक्ष्मीनारायण मंदिर के सामने, चण्डीगढ़। फोन : (०१७२) ५६०९४५, ६६०४०१.

(३) **लुधियाना आश्रम में शक्तिपात साधना शिविर** : २३ से २८ सितम्बर '९७. प्रथम दो दिन विद्यार्थी शिविर । जाहिर सत्संग रोज शाम ४ से ६. संत श्री आसारामजी आश्रम, साहनेवाल-डेहलों रोड, नहर के किनारे। फोन : ४४२२९९, ५३६०१३, ४७१७००.

(४) **देहरादून में** : २ से ५ अक्तूबर '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. शाम ४ से ६. परेड ग्राउन्ड. फोन : (०१३५) ६८३२०४, ६५३४८९, ६५०२७५, ६८५२२०.

(५) **आगरा आश्रम में शरदपूर्णिमा शिविर** : १६ से १९ अक्टूबर '९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, सिकंदरा, आगरा । फोन : (०५६२) ३७१७७०, ३७२०१६.

वाशी नवी मुंबई मे संकीर्तन यात्रा का एक दृश्य ।

कोटा (राजस्थान) में निकली संकीर्तन यात्रा में झूमते-झुमाते हरि-गुरु के प्यारे ।

स्वतंत्रता दिवस स्वर्ण जयंती के शुभ अवसर पर मेरठ में जनजागरण हरिनाम संकीर्तन यात्रा ।

सुरत में जन्माष्टमी महोत्सव पर मण्डप में लगी मक्खन की मटकीयों को डोर से फोडते हुए पूज्यश्री

उठे हजारों हाथ जब पूज्यश्री ने मक्खन लुटाया।

जन्माष्टमी पर्व पर पूज्यश्री के मुखारविन्द से प्रस्फुटित पीयूषवाणी का रसपान करते श्रद्धालु भक्तगण।

संत श्री आसारामजी साधक परिवार वराछा (सुरत) द्वारा स्वतंत्रता दिवस पर निकाली संकीर्तन यात्रा।

अहमदाबाद आश्रम में रक्षाबंधन पर पूज्य बापूजी का सत्संग कार्यक्रम।

स्वतंत्रता दिवस की स्वर्ण जयंती के अवसर पर राजकोट आश्रम में पूज्यश्री के वचनामृतों का लाभ लेते भक्तजन।

Read. No. GAMC/1132 BOMBAY, BYCULLA PSO LICENCE NO. 1 Regd. No. MH/MNV-01

पहले एक, बाद में एक अभी भी तू अनेकों में एक का एक प्रभु।

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू